मीठे प्रवचन- 4

"चलें मृत्यु के पार"

''प्रवचनकार''
आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज
के ५३ वें मुनि दीक्षा दिवस पर प्रकाशित

ग्रंथांक 13

प्रकाशक:
श्री सत्यार्थी मीडीया
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

प्रथम संस्करण : अक्टूबर 2015
प्रतियाँ : 2,000

मीठे प्रवचन- 4

आचार्य वसुनंदी मुनि

मंगलाशीष:
प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशक
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

।।प्राक्कथन।।

हमारे मन में उत्पन्न हुए विचारों की तरंगे - मुख से निसृत शब्द/ ध्वनि या भाषा वर्णगाओं की वाग्वेलाऐं तथा शारीरिक चेष्टाओं की आवीची समूह ब्रह्माण्ड के अंतिम छोर तक पहुँचते हैं। हमारी प्रति समय की योगत्रय की प्रवृत्ति सर्वज्ञों के ज्ञान व दर्शन का विषय वे है ही, कदाचित छद्मस्थों के ज्ञान व दर्शन का विषय तो बन जाती है। कब होगा संशोधन हमारी योगत्रय की प्रवृत्ति में? एवं कब होगा उपयोग की धाराओं में परिवर्तन ?

प्रत्यक्ष में भी देखने में आता है कि व्यक्ति का व्यवहार ही उसके व्यक्तिव का परिचायक होता है। व्यक्ति का व्यवहार ही दूसरों को दोस्त व दुश्मन बनाने में समर्थ होता है।

आत्मविश्वास एक तीव्रगामी अश्व है जो कि अपने सवार को नियम से मंजिल तक पहुँचाता है, यदि उसके एक हाथ में तत्त्व ज्ञान रूपी अश्व की लगाम हो और उसके दूसरे हाथ में निर्दोष संयम का चाबुक ।

आज के युग में ही नहीं, हर युग और क्षेत्र में दृढ़ परिश्रमी नैष्ठिक उत्साही व्यक्ति ही सफलता के सर्वोच्च शिखर को छूते हैं। सम्यक् परिश्रम शरीर को स्वस्थ, हृदय को शुद्ध, मस्तिष्क को क्रियाशील एवं वाणी को निशंक व निर्भीक बनाता है।

प्राणी दर्पण जैसा बनना चाहिए । दर्पण सबको उनका असली स्वरूप दिखाता तो है किन्तु किसी का संग्राहक नहीं । कर्म भी तो आइने की तरह से न्यायप्रिय हैं जो प्रत्येक प्राणी को उसका असली स्वरूप दिखा देता है इसलिए प्रज्ञ पुरुषों को कर्म के प्रति भी कृतज्ञ बनकर रहना चाहिए । ध्यान रखो ! सुंदर लोग सदा अच्छे नहीं लगते किन्तु अच्छे लोग (भले प्राणी) सदा ही सुन्दर लगते हैं। प्रभु के सामने झुकने वाला विनम्र, सत्य व ईमानदारी पूर्वक भक्ति तथा करुणा रूप प्रवृत्ति करने वाला दुनियाँ को बहुत अच्छा लगता है किन्तु, जो संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ उक्त प्रवृत्ति करे तो स्वयं के परमात्मा को व तीन लोक के परमात्माओं को वह सदा ही अच्छा लगता है।

क्षमा तो वह सुंगध है जिसे उन पैरों पर भी विखेर दिया है जिन पैरों ने उसे कुचल दिया है। संसार में यथार्थ विद्वान् वह है जिसके पास अधिक अनुभव, सहनशीलता, निर्भीकता, उदारता, आत्मबोध एवं वात्सल्य भाव होता है, इसके विपरीत मात्र शब्द शास्त्रों का पाठी कोई महाविद्वान् नहीं कहलाता।

कलियाँ और सुमन जब खिलते हैं तब षट्पद, तितलियाँ व मधुमक्खियाँ स्वतः ही आ जाती हैं। आप यर्थाथ संयमी, चारित्रश्रेष्ठ व निर्मल सदाचारी बनो तो सही आपकी सुगंध पर समूचा विश्व स्वतः ही मोहित हो जाएगा ।

न्यायप्रियता/ ईमानदारी व शांति एक सिक्के के दो पहलू है जहाँ एक है वहाँ दूसरी चीज अवश्य है। शांति का प्रारम्भ अपनी कषायों के शमन से व निश्छल मुस्कराने से होता है।

दुनियाँ में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि "शब्दों में दाँत नहीं होते" किन्तु, शब्द जब नाजुक चित्त में अपने दाँत गढ़ा देते हैं तो उनके घाव (जख्म) कभी - कभी ताउम्र भी नहीं भरते, दर्द कितना होता है यह तो वही जाने जो सहन करता है।

अंधा केवल वह नहीं है जो देख नहीं सकता बल्कि अंधा तो वह है अपनी गलतियों,अपराधों, दोषों व बुरी आदतों को देखकर भी उन पर मायाचारी पूर्वक पर्दा डाल देता है।

संसार में तत्त्व ज्ञान / आत्मबोध, सदाचार/ संयम, मृदु व्यवहार, वात्सल्य भाव से बढ़कर कोई सम्पत्ति नहीं क्योंकि, अन्य प्रकार की भौतिक सम्पत्ति की सुरक्षा हमें करनी पड़ती है, भौतिक सम्पत्ति तो विपत्ति का या प्राण हरण का निमित्त भी बन जाती है किन्तु आत्मबोध, संयम, सत्यानुसूत मृदु व्यवहार, प्रशमभाव, सर्वस्व मैत्री आदि ऐसी सम्पत्ति है जो हर समय (हरदम) सर्वत्र आत्मा की रक्षा करती है।

इत्यादि प्रकार के सुबोधप्रद मधुर वाक्य रूपी पुष्पों का गुलदस्ता है यह 'मीठे प्रवचन' का चतुर्थ भाग (चलें मृत्यु के पार), प्रस्तुत कृति में "मृत्यु के

पार" पहुँचने की कला बताई हैं। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने सुभाषित रूप शताधिक प्रवचन उच्चरित किए, उनके कुछ अंशों का यहाँ संकलन किया गया है, स्व- पर हितार्थ उनका यहाँ संग्रह किया गया है।

इसकी पाण्डुलिपि तैयार करने में, प्रूफरीडिंग एवं उपदेश सामग्री को व्यवस्थित करने में आर्यिका श्री वर्द्धस्वनंदिनी, वर्चस्वनंदिनी, श्रेयनंदिनी, सुरम्यनंदिनी तथा यशोनंदिनी माता जी का सहयोग है, परम पूज्य गुरुदेव का उन्हें मंगल आशीर्वाद एवं हमारी शुभाकाँक्षाऐं । मुद्रक "श्री सत्यार्थी मीडिया" के प्रधान सम्पादक श्री सचिन जैन "निकुंज" एवं अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का सहयोग करने वाले सुधी श्रावक महोदय (जिन्होंने गुप्त रूप में प्रकाशन कराया है, नाम की अभिलाषा से रहित बन्धुओं) को तथा प्रकाशन करने वाली संस्था के प्रत्येक सदस्यों को वात्सल्यपूर्वक धर्मवृद्धि शुभाशीष ।

प्रत्येक पुस्तक हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर आद्योपान्त पढ़ें, इस श्रुत सिंधु में से जितने सुगुणरूपी मुक्ता आपको दिखें उन्हे आप ग्रहण करें । यदि कोई मुक्ता आपको रूचिकर नहीं लगा हो तो हमें सूचित करने का अनुग्रह करें ।

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य भगवन श्री वसुनंदी जी मुनिराज के श्री चरणों में अपनी ओर से एवं संघस्थ सभी (आ. ब्रह्मनंदिनी, श्रीनंदिनी, प्रबोधनंदिनी, सुयोग्यनंदिनी, प्रकाम्यनंदिनी एवं देवनंदिनी) आर्यिकाओं की ओर से भी सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति सहित अनंतशः नमोस्तु - नमोस्तु - नमोस्तु ।

"सर्वे भवंतु सुखिनः"

श्री शुभमिति श्रावण वदी 14, गुरुवार
वी. नि. सं० 2541, 13 अगस्त 2015
श्री दि० जैन मंदिर, रेवाड़ी (हरि०)

गुरु चरण चंचरीका
संघ नायिका, स्वसंघ प्रवर्तिका
गणिनी आर्यिका गुरुनंदिनी ?
रेवाड़ी (हरियाणा)

पुण्यार्जक श्रावक

श्रीमती नीना जैन धर्म पत्नी
विनोद जैन (मिलेनियम)
फिरोजाबाद उ.प्र.
के सौजन्य से 1000
प्रतियाँ प्रकाशित

6-7, Vibhav Nagar, Sector -3
Firozabad - 283203 INDIA
PHONE - 9837013858
Mail - info@allegiance - overseas. com
www allegiance - overseas . com

मंगलाशीष:

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती

दि. श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

परमपूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी आचार्य श्री

वसुनंदी जी मुनिराज

के

पढ़ना ना भूले — सुप्रसिद्ध — सुनना न भूले

श्री सत्यार्थी मीडीया की प्रस्तुती

मीठे प्रवचन

सोमवार से शनिवार सुनिए

प्रातः 8 बजे से

जिनवाणी चैनल पर

जिनमें अकेले चलने के हौसले होते हैं
उनके पीछे एक दिन काफिले होते हैं

1 अमोघ अस्त्र

व्यक्ति के व्यवहार और वाणी से पूर्व जो सामने वाले को प्रभावित करती है वह है - वर्गणाऐं । व्यक्ति जैसा सोचता है उसी प्रकार की वर्गणाऐं उसमें से निकलती हैं यदि चित्त पवित्र, सरल, सहज है तो पावन वर्गणाऐं ही निःसरित होंगी । स्वार्थ को छोड़कर चित्त की शुचिता के साथ जो भी भावना भायी है वह निश्चित रुप से पूरी होती है। किसी व्यक्ति को यदि मित्र बनाना चाहते हो तो उसके प्रति अच्छी भावना भानी शुरू कर दो वह स्वयं चलकर ही तुमसे मित्रता करने आ जाऐगा किसी से शत्रुता खत्म करनी है तो उसके प्रति अच्छा सोचना प्रारंभ कर दें । चित्त की सरलता व पवित्रता के साथ यदि मंजिल को ओर बढ़ा जाऐ तो वह मंजिल भी शीघ्र प्राप्त हो जाती है। चित्त की पवित्रता वह अमोघ अस्त्र है जो सदैव अपने लक्ष्य तक पहुँचता है कभी चूकता नहीं अतः सब के प्रति अच्छी, मंगल व शुभ भावनाएँ चित्त को दर्पण की भाँति निर्मल रखें जिससे आप जहाँ भी पहुँचे तो आपके अंदर से निकलने वाली निर्मल शुभ वर्गणाऐं सामने वाले को आपके प्रति अच्छा करने के लिए प्रेरित करें ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

2

कैसे चलें

छोटों को मार्ग बताने की आवश्यकता नहीं है, न सिखानी है चलने की कला। स्वयं ऐसे चले कि आपके पीछे आने वाले न तो गुमराह हों न फिसलें अर्थात् आवश्यकता है स्वयं सही मंजिल को चुनने की, स्वयं समीचीन मार्ग पर चलने की। स्वयं गलत राह पर चलते हुए किसी को सम्यक् मार्ग निर्देशन देना व्यर्थ है क्योंकि शब्दों से ज्यादा प्रभाव आचरण का पड़ता है। आपका आचरण, व्यवहार ऐसा हो कि आपके कुछ कहें बिना ही आपके अनुज उसे स्वीकार लें यदि गलत मार्ग पर चलते हुए छोटों से सही मार्ग पर चलने की चाह रखते हो तो वह आकाश से पुष्प चाहने की तरह से है। स्वयं को सम्हाल लो आने वाली पीढ़ी स्वयं सम्हल जाऐगी। किसी टीम, परिवारादि का नेतृत्त्व करने वाले ध्यान रखें किसी ऐसे मार्ग का सहारा ना ले जिससे पीछे चलने वालों का फिसलने का डर हो बल्कि ऐसे चले कि आपके कदमों के निशान पर चलते हुए सुरक्षित रुप से मंजिल को प्राप्त कर लें।

आचार्य वसुनंदी मुनि

3

कौन बचा सकता है पाप के अभिशाप से

पाप का अभिशाप जीवन को उस तरह बर्बाद कर देता है जैसे अनाज में लगा घुन (घुन उसे कहते है जो अन्दर घुसकर नष्ट करें) पाप आत्मा में घुसकर आत्मा को नष्ट करता है, पाप राहु - केतु की तरह आत्मा के तेज, शौर्य, पराक्रम व अमृतोपम सुखद आभा को नष्ट करने वाला होता है। पाप का ताप आत्मा को इस तरह जलाता है जैसे सूर्य का प्रचण्ड तेज सरोवर के जल को और पाप का संताप आत्मा को दहकाता है। जिस तरह पानी में पड़ी हुई विद्युत से युक्त लोहे की छड़ जल को गर्म करती है, उबालती है, वाष्पीकरण करके उसे नष्ट कर देती है। पाप के अभिशाप संताप और परिताप से बचाने में कोई समर्थ नहीं, हाँ आप्त के चरणों में पहुंचकर उस पाप से आत्मा की रक्षा की जाती है। प्रभु नाम गुरु नाम ही समर्थ है इसलिए पंचपरमेष्ठी या उनके अमृत वचन अथवा स्वयं की परमेष्ठी स्वरूप दशा ही आत्मा के लिए शरण है।

4 गिद्धात्मा से सिद्धात्मा

आत्मा की चार दशाऐं दृष्टिगोचर होती है, ज्यों - ज्यों दशा सुधरती जाती है त्यों - त्यों आत्मा ऊपर उठती जाती है । पहली दशा में आत्मा को 'गिद्ध आत्मा' कह सकते है यह आत्मा पर पदार्थ में या अनिष्टकारक वस्तुओं में अति आसक्त रहती है ये उर्ध्व गति या उन्नति की ओर गमन भी करे किंतु दृष्टि गिद्ध की तरह अद्योगति की ओर रहती है। दूसरी 'विद्ध आत्मा' होती है जिसे आत्मा और अनात्मा का भेद - विज्ञान हो गया किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म उसके शरीर में विंधे हुए तीर की तरह से कष्ट देता है यदि किसी के शरीर में वाण लगा हो तो उसे निकालते समय बहुत कष्ट होता है। तीसरी आत्मा को हम 'निसिद्ध आत्मा' भी कह सकते है, यह आत्मा गिद्ध और विद्ध दशा से तो मुक्त है किन्तु अंतरंग के घाव पूर्णतया से ठीक नहीं हुए अतः कभी - कभी कष्ट का अनुभव करती है, इसे उत्तम अन्तरात्मा भी कहा जा सकता है किन्तु आत्मा की चतुर्थ दशा उसकी नियति, प्रकृति और स्वभाव कहा गया है उसे 'सिद्धात्मा' कहते हैं, सिद्धात्मा सर्वकर्मो से रहित मुक्तात्मा को कहा जाता है।

5 चिंता नहीं चिंतन करें

जीबन में महत्वाकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं तब उनको लेकर व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है परंतु वास्तविकता तो यह है प्रकृति ने सब के लिए सब व्यवस्थित किया हुआ है। बच्चे के जन्म से पूर्व माँ के आँचल में दूध प्रकृति स्वतः भर देती है। जब प्रकृति व्यवस्था कर रही है तो चिंता क्यों? जो होता है अच्छे के लिए ही होता है, भगवान जो करता है, अच्छे के लिए करता है। जीवन में जो मिले उसका स्वागत करो और जो खो जाए उसको भी प्रेम से स्वीकार करो । चिंता करने से जीवन के संयोग नहीं बदलते । चिंताओं से समस्या का समाधान भी नहीं निकला करता अच्छा तो यही है कि चिंता करने की बजाय चिंतन करें, निर्णय लें तदनुसार कार्य करें, परिणाम जो आए उसको स्वीकार करें । प्रत्येक कार्य को जोश, उमंग, उत्साह से करें, कोटरी का भी स्वागत करो और कोठी का भी स्वागत करो । चिंता तो व्यक्तियों को भटका देती है जबकि चिंतन भटके हुए व्यक्तियों को सम्यक् मार्ग दिखाता है। चिता समान चिंता से दूर रहें और जीवन में चिंतन को स्थान देकर अग्रसर रहें । मस्त रहो, व्यस्त रहो चिंताओं से मुक्त रहो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

6

कैसे हों साथी

जीवन में बहुत से रिश्ते तो जन्म लेते ही मिलते हैं जिन्हें हमें बनाना नहीं होता। कुछ रिश्ते जिसमें माता - पिता की भूमिका अधिक होती है जैसे पति - पत्नी का रिश्ता परंतु एक रिश्ता ऐसा होता है जो हम स्वयं बनाते हैं वह है मित्रता। अपना मित्र हम स्वयं चयन करते हैं और जब स्वयं चयन करना ही है तो अच्छे का चयन करो। मित्र हमारा सहचर, हमारा प्रतिरुप होता है। भूलकर भी कोई ऐसा व्यक्ति हमारा प्रतिरुप न बन जाए, हमारा निकटवर्ती न बन जाए जो गलत मार्ग पर चल रहा हो अथवा गलत आदतों का शिकार हो। वह दया, प्रेम, क्षमादि गुणों से युक्त हो, सभ्य हो, कोई गलत सलाह आपकों न देता हो, सुसंस्कारवान् हो। जिन लोगों के बीच अथवा जिनके साथ आप जी रहे हैं आप वैसे ही बनेंगे, लोगों का दृष्टिकोण भी तुम्हारे प्रति वैसा ही बनता जाऐगा अतः अच्छे मित्र बनाएँ जो जीवन के हर कदम पर आपका साथ दे। ऐसे व्यक्ति का चयन करें जिससे आप भी गौरवान्वित हो, आपके जीवन का भी विकास हो और आपके जीवन में अच्छे संस्कारों की शुरूआत भी हो।

आचार्य वसुनंदी मुनि

7

परिचय मेरे साथियों का

सांसारिक प्राणियों से उनके साथियों के विषय में पूछें जाने पर वे माता - पिता, भाई, बहन आदि को अपना साथी बनाएंगे परन्तु साथी वे नहीं होते जो कुछ समय तक साथ चलें और फिर छोड़ दें। साथी तो वास्तव में वे होते हैं जो एक जन्म में हो नहीं, जन्म - जन्म ही नहीं, भवो - भवों तक साथ दे मोक्ष पर्यंत साथ दे। शरीर से संबंध रखने वाले पुत्रादि तो वह है इस भव में भी पूरा साथ निभाने में कई बार असमर्थ देखे जाते हैं तो वे स्वजन - परजन किस प्रकार साथी माने जा सकते हैं। स्वार्थ के वशीभूत पूर्ण संसार जब तक स्वार्थ पूर्ति होती है तब तक तो साथ दिखाई देते है परंतु बाद में सब साथ छोड़कर चले जाते है जो मोक्ष पर्यंत साथ दे ऐसा तो केवल एक ही साथी है धर्म। धर्म ही जीव का हमेशा साथ देता है अतः अपना एक पुत्र धर्म को भी बनाओ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

8

ऐसे मिलेगा स्वर्ग

प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के बाद स्वर्ग की कामना रखता है परंतु मृत्यु के बाद स्वर्ग उस ही को मिल सकता है जिसने जीते जी अपने जीवन को, अपने परिवार को, घर को स्वर्ग के समान बना लिया हो । जहाँ घर के बड़ों में छोटों के प्रति वात्सल्य, और छोटों में बड़ों के प्रति आदर - सम्मान की भावना रहती है, जहाँ लड़ाई अधिकारों की नहीं है बल्कि सभी लोग अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ पालन करते हैं, जहाँ छोटे बड़ों को पलटकर कभी जवाब नहीं देते और बड़े छोटों को क्षमा कर प्रसन्नता के साथ रहते है, जहाँ घर की स्त्रियाँ पुरुषों को कभी गलत सलाह नहीं देतीं और पुरुष स्त्रियों का सम्मान करते हैं माता - पिता की सेवा करते हैं, जहाँ वृद्धों का सम्मान सत्कार किया जाता है और बच्चों को सुसंस्कारवान् बनाया जाता है वह घर वास्तव में स्वर्ग है यदि देवों के बीच में पहुँचने की इच्छा रखते हो तो यहीं से अच्छा आचरण करो जब मानवों के बीच में रहने की योग्यता आ जायेगी तब विश्वास है देवों के बीच भी रहने योग्य बन जाओगे ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

9

कैसे कटे बुढ़ापा?

प्रायःकर प्रौढ़ावस्था को पार करने के पश्चात् जब वृद्धावस्था शुरु होती है तब व्यक्ति यह कहकर कुछ करना बंद कर देते हैं कि "अब तो हम बूढ़े हो गए।" वृद्धावस्था कोई अभिशाप नहीं वह भी जीवन का एक पड़ाव है। जिसने उत्साह के साथ जीवन का हर पड़ाव पार किया है वैसे ही इसको भी जीना है। अच्छी - अच्छी पुस्तकों को इकट्ठा कर उन्हें पढ़ने से ज्ञानवृद्धि भी होती है और कुछ नया सीखने का भी आनंद मिलता है। शरीर की बैटरी तो लो (low) होने लगी है पर आत्मा रूपी बैटरी को परमात्मा के संयोग से चार्ज किया जा सकता है। बुढ़ापे में आवश्यकता से अधिक आराम करने की बजाय अपने आप को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखना चाहिए । कई व्यक्ति बुढ़ापे में नई शिक्षाएँ ग्रहण करते हैं जिससे कई लोग लाभान्वित होते है जैसे - कोई लेखन करता है, कोई चिकित्सक पद्धति सीखकर दूसरों को निरोगी करता है। वृद्धावस्था में दखलअंदाजी न करें जब परिवारीजन पूछें तब उन्हें सलाह दें अन्यथा अपने काम में मस्त रहें ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

10

जीओ प्रकृति के साथ

आज प्राणी प्रायः दिखावट, सजावट, बनावट में जी रहा है जो कि जीवन में कड़वाहट पैदा करने वाली है। चेहरे पर किया गया मेक - अप ज्यादा देर नहीं टिकता । दिखावा या बनावटी कोई भी चीज ज्यादा देर नहीं रहती । चाहे बनावट और सजावट तो बहुत कर ली अब प्रकृति के साथ जीकर देखो । प्रकृति के साथ जीने वाला व्यक्ति स्वस्थ व सम्मानीय होता है क्योंकि जैसा उसका व्यवहार घर के बाहर है, वैसा घर के अंदर भी है, जैसा मित्रों के साथ है वैसा परिवारीजनों के साथ भी है और शिष्य आचरण व मिष्ट वाणी के व्यक्ति का सम्मान सभी ओर होता है अतः बनना नहीं, होना है। हम सभी अपने स्वभाव से परिचित हैं हमारा स्वभाव गुस्सा करना नहीं क्षमा करना है, विश्वासघात करना नहीं, परोपकार करना है, किसी का काम बिगाड़ना नहीं बनाना है तब जो हमारा स्वभाव है, प्रकृति है उसी के अनुसार कार्य करें न । क्यों विभाव में, प्रकृति के विरुद्ध जाते है। प्रकृति के विरुद्ध जब भी कोई चलता है तब प्रकृति कुपित होती है और तब आते है - भूकंप, बाढ़ आदि । यदि आत्म प्रकृति के विरूद्ध चलते हैं तो आप सब देख ही रहे है उसका दुष्कर परिणाम । वह कर्म बंधन में कसती चली जाती है अतः बनो नहीं होओ, प्रकृतिस्थ रहो ।

11

संस्कृति और सभ्यता

संस्कारवान् व्यक्ति की कृति संस्कृति कहलाती है। अतीत में सुसंस्कारित व्यक्तियों द्वारा किए कार्य संस्कृति का रुप ले लेती है। जिस देश की संस्कृति, इतिहास जितना शिष्ट और उन्नतशील होता है वह देश उतना ही अच्छा माना जाता है। देश के दीर्घकालीन अवस्था के लिए आवश्यक है - संस्कृति की रक्षा । आज का समय यानि वर्तमान कल अतीत बनेगा । संस्कृति से देश की पहचान होती है और देश वहाँ के नागरिकों से पहचाना जाता है अतः आवश्यकता है जीवन में सुसंस्कारों को अपनाने की, बच्चों को अच्छे संस्कार देने की जिससे देश की, परिवार की, समाज की, कीर्ति समुज्जवल रहे। दूसरी चीज है - सभ्यता । वर्तमान की जीवंत जीवन शैली सभ्यता कहलाती है। वेशभूषा और खान - पान यहाँ की सभ्यता को दर्शाती है यदि वेशभूषा अव्यवस्थित व खान - पान अशुद्ध है तो वहाँ की सभ्यता भी अव्यवस्थित व अशुद्ध कहलायेगी । यदि व्यवस्थित व शुद्ध है तो सभ्यता भी व्यवस्थित और शुद्ध कहलायेगी । संस्कृति को तो बदला नहीं जा सकता पर सभ्यता में परिवर्तन अवश्य किया जा सकता है अतः अपने समाज, देश, राष्ट्र की सभ्यता भी शुद्ध और व्यवस्थित बनाये ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

12

अधिकार पाना चाहते हैं आप

आज संसार में लड़ाई अधिकारों की है परंतु इन्हें प्राप्त करने का आसान तरीका है कर्त्तव्यों का पालन करना । व्यक्ति को कभी कोई काम सौपा नहीं जाता । आपकी कर्त्तव्य निष्ठा, कार्य में लगन, योग्यता से स्वतः वह कार्य आपको मिल जाता है और उसके साथ ही प्राप्त हो जाते हैं अधिकार । यदि आप विद्यार्थी, इंजीनियर, शिक्षक, गृहणी या और कुछ भी हैं तो अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, परिश्रम से कार्य को पूर्ण करें तब इसका परिणाम आप स्वतः देखेंगे । कहा भी है

अधिकारं पदं प्राप्तं, नोपकारं करोति यः ।
अकारा लोपमाप्नोति, ककारा दित्व मुच्यते ।।

जो अधिकारों को प्राप्त कर किसी का उपकार नहीं करता अथवा कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता उसके अधिकार के 'अ' का लोप होकर 'क' का द्वित्त्व हो जाता है अर्थात् धिक्कार है अतः प्रत्येक व्यक्ति को निष्ठा से अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए । कर्त्तव्यों का पालन करने से व्यक्ति अपनी और दूसरों की नजरों में अच्छा स्थान बनाए रखता है और साथ ही प्राप्त हो जाते है अधिकार ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

13

क्या बनना चाहते हैं आप?

प्रत्येक भवन को खड़े करने से पूर्व नींव खोदी जाती है और पुनः भवन की ऊँचाई के मजबूती के अनुसार उस नींव को पत्थरों आदि से भरा जाता है तब एक महल बनकर तैयार कर दिया जाता है। नींव होने पर ही वह स्थायित्व को प्राप्त हो पाता है और ऊपर लहरती हुई दिखाई देती है ध्वजा अथवा ऊपर की चोटी सब देख प्रसन्न होते हैं। ऊपरी इमारत को देख सभी उसकी ऊँचाईयों को प्राप्त करना चाहते हैं और प्रसिद्धि होती है उस ऊपर खड़े महल की । परंतु सत्यता तो यह है कि जो भवन इतना ऊँचा दिखाई दे रहा है उसकी नींव और उन नींव के पत्थरों का उसमें महत्वपूर्ण योगदान है जो कभी दिखाई नहीं देते । यदि नींव के पत्थर बाहर निकल आऐं तो वह इमारत ढह जायेगी । किसी परिवार, समूह (यूथ), समाज, देश को मजबूती देने के लिए क्या बनना चाहते हैं आप नींव के पत्थर या भवन का शिखर? हाँ ! भवन के शिखर को तो बार -२ बदला जाता है परंतु जब तक भवन का अस्तित्व है तब तक नींव को हिलाया भी नहीं जाता ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

14

Advertisement में नहीं Adjustment कर जिएं ।

आज प्रायः कर अधिकांश लोग प्रदर्शन में जी रहे हैं। छोटी से छोटी वस्तु का Advertisement कर जी रहे हैं परंतु यह जीवन में कोई समीचीन परिवर्तन लाने वाला नहीं है। एक कला है जो जीवन में आमूल - चूल परिवर्तन कर सकती है उस कला का नाम है Adjustment जिस व्यक्ति के जीवन में Adjustment की कला आ गई वह कभी परेशान नहीं होता और ना ही उसे कभी किसी से कोई शिकायत होती है क्योंकि निभना और निभाना ऐसी चाबियाँ हैं जिनसे कोई भी परेशानी रूपी ताला खोला जा सकता है। जब व्यक्ति इन दो कलाओं का स्वामी बन जाता है तब वह किसी के भी साथ रह सकता है। या तो साथ रहने वाले के अनुसार ढल जाएगा अर्थात् उसके साथ निभ जाएगा या उसे अपने अनुसार ढाल लेगा, हर हाल में उसे निभा लेगा । यदि प्रत्येक व्यक्ति निभना और निभाना सीख जाऐं तो संबंधों में दरार नहीं पड़ेगी अतः संबंधों को बनाए रखने के लिए Advertisement में नहीं Adjustment से जिएँ ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

15

आवश्यक है मुस्कराहट

यदि कोई व्यक्ति मुस्कराता है तो आप देखते हैं एक गोदी का नासमझ शिशु भी मुस्करा जाता है और उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है जबकि क्रोधित व्यक्ति को देखकर रोने लगता है उसके पास भी नहीं जाता । मुस्कराता हुआ चेहरा स्वागत का प्रतीक है। विनय, सदाचार, क्षमा, भक्ति आदि गुण मुस्कराहट के द्वार से होकर गुजरते हैं। मुस्कराता हुआ चेहरा उसके शुद्ध व निर्मल चित्त का प्रतीक है, धर्म ध्यान का प्रतीक है। मुस्कराहट व्यक्ति में नई ऊर्जा का संचार करती है, उमंग और उल्लास भरती है। यह मनुष्य की मृत कोशिकाओं को जीवंतता प्रदान करती है। टैंशन और डिप्रैशन जैसे रोगों से दूर रखती है। यह आपके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है। व्यक्तित्व निर्माण में लगे लोगों के लिए यह एक आवश्यक सूत्र है अतः मुस्कराइये । सुबह उठते ही थोड़ा मुस्कराइये।अपने दिन की शुरूआत मधुर मुस्कान के साथ करें । वहीं मुस्कराहट आपके लिए ऊर्जा का काम करेगी, मुस्कान वह टॉनिक है जो आपको परेशान, हताश और उदास नहीं होने देगा । मुस्कराएँ और पुनः अपने कार्य में जुट जाऐं ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

16

ऐसी हो शिक्षा

शिक्षा को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति इसके सही स्वरूप को अभी नहीं समझ सके । शिक्षा केवल डिग्रियों को प्राप्त करने का नाम नहीं है। शिक्षा प्राप्त कर नौकरी कर धनार्जन करना मात्र पर्याप्त नहीं है। शिक्षा व्यक्ति को अहंकार नहीं विनय देती है, कदाचार नहीं सदाचार सिखाती है, क्रोध नहीं क्षमा प्रदान करने की सीख देती है, चरित्र निर्माण की प्रेरणाा देती है। शिक्षित व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरों के लिए आदर्श होता है। माता-पिता व वृद्धों की सेवा, विनम्रता, परोपकार, शील पालन आदि उनके सहज गुण होते हैं। उनका चलना, बोलना, उठना, बैठना, खाना-पीना स्वयं दूसरों को शिक्षा प्रदान करता है। नैतिक मूल्यों पर खरे उतरने का नाम है समीचीन शिक्षा । परिवार, समाज और देश में आदर्श की स्थापना एक समीचीन शिक्षा को प्राप्त करने वाला ही कर सकता है अतः केवल धनार्जन के लिए शिक्षा ग्रहण न करें अपितु उससे अपने व्यक्तित्व का निर्माण करें तभी शिक्षा की सार्थकता है तो स्वयं को क्या मानते हैं आप शिक्षित या अशिक्षित?

आचार्य वसुनंदी मुनि

17

शल्य तीन - कर विलीन

शल्य का अर्थ है जो चेतना में निरन्तर काँटे की तरह चुभती है, आत्मा का उपयोग उसके अतिरिक्त किसी और में न जाने पाये । शल्यधारी सदैव दुःखानुभूति ही करता है उसे सुखानुभव नहीं होता, शल्य विमोचन ही सुख का कारण है। जिस प्रकार पैर आदि में लगा काँटा निकालने पर सुख की प्रतीति होती है, दुःख में कमी आ जाती है उसी प्रकार शल्य का परित्याग करते ही मन धर्म ध्यान करने में समर्थ हो जाता है, शल्य के रहते धर्म ध्यान में स्थिरता नहीं रहती, उस शल्य के तीन भेद है - क्या आप जानते है कि उस शल्य के तीन भेद ही क्यों हैं? यदि नहीं तो समझियें - काल तीन होते है १. भूतकाल २. वर्तमान काल ३. भविष्य काल और शल्य भी तीन होती है १. माया शल्य २. मिथ्यात्व/ मोह शल्य ३. निदान शल्य ।

अतीत की गलती छुपाने हेतु निरंतर की जाने वाली मायाचारी माया शल्य है, वर्तमान मे परवस्तु में निरंतर लीनता रुप मोहासक्ति/ मिथ्यात्व ही मोह शल्य / मिथ्या शल्य है, भविष्य में उत्तम भोगों की प्राप्ति हेतु निदान शल्य है, इन्हें छोड़ कर निशल्य बनों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

18

प्रकृति समत्व

शरीर में तीन प्रकार की प्रकृतियाँ होती है १. वात प्रधान २. पित्त प्रधान ३. कफ प्रधान, जब ये तीनों धातु - उपधातु असंतुलित या असामान्य अवस्था में होती है तब शरीर रोगी हो जाता है और रोगी शरीर धर्म ध्यान करने में असमर्थ हो जाता है। शरीर सुख हेतु तीन प्रकृतियों का समाधान आवश्यक है, तन की स्वस्थता ही वचन मन और चेतन की स्वस्थता का कारण है, स्वस्थ चेतन ही स्वनिकेतन (सिद्धालय/ सिद्धक्षेत्र) को प्राप्त करने में समर्थ होता है। तन की प्रकृतियों को शमन करने के साथ - साथ मन की प्रकृतियों का शमन करना भी बहुत जरुरी है वे तीन प्रकृतियाँ है १. शल्य २. दण्ड ३. कषाय । चेतना को चेतना में लीन करना तभी संभव है जब तीनों शल्यों का विमोचन हो जाये, तीन दण्ड (योग) अपनी उद्दण्ता छोड़ दें और मन कषायों के श्याम वर्ण का परित्याग कर दे तभी मन समत्व की धारा में अवगाहन करने में समर्थ हो सकेगा । प्रकृति के समत्व का अर्थ है चित्त की सहज, सरल और शुद्ध दशा का प्रकष्ट हो जाना है और यही है चेतना की प्रकृष्ट कृति - प्रकृति ।

19

जैसा माल वैसा भाव

जल में नमक डाल देने से वह खारा, शक्कर डाल देने से मीठा, नींबू निचोड़ देने से, नींबू आदि का रस डाल देने से खट्टा, आँवले का रस डालने से कषैला, पिसी मिर्च मिला देने से चरपरा और नीम, करेला, गिलोय, काली जीरी या चिरायता मिला देने से कड़वा हो जाता है इसी प्रकार चित्त में आर्तध्यान होने से वर्तमान में दुःखी, रौद्र ध्यान की संगति से भविष्य काल में महा दुःखी, धर्म ध्यान की संगति से सुख का प्रारंभ व शुद्ध ध्यान की प्राप्ति अचिन्त्य सुखानुभव का कारण होती है। यह तो आप जानते ही है कि दुकानदार अपनी दुकान पर अनेक प्रकार की वस्तुऐं रखता है किन्तु समस्त वस्तुओं का मूल्य एक नहीं होता, सबकी कीमत अलग - अलग होती है कोई वस्तु १० रूपये मीटर है तो कोई २० रूपये मीटर, कोई ५० रू० मीटर तो कोई १०० रूपये मीटर इसी प्रकार खाद्यान्न कोई १० रू थाली, तो कोई २० रू कोई ५० रू. तो कोई १०० रू० और ५०० रू० भी हो सकती है इसी तरह धातु, पत्थर, लकड़ी, पशु, भवन और इंसान का भी मूल्यांकन होता है, यह शाश्वत सत्य है जैसा माल होता है वैसा ही भाव होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

20

जैसा वह बनना चाहता है

जल, वस्त्र, भवन या अन्य वस्तुऐं जैसे रंग की संगति करती है उन्हें आत्मसात् करती है उनका रंग भी वैसा ही हो जाता है, काले रंग की संगति से काली, पीले रंग की संगति से वस्तु पीली, हरे रंग की संगति से हरी, नीले रंग की संगति से नीली, लाल रंग की संगति से लाल एवं सफेद रंग की संगति से सफेद रह जाती है, अथवा प्याज के बीच में पड़ा वस्त्र बदबूदार व पुष्पों के साथ पड़ा वस्त्र या टोकरा भी खुशबूदार हो जाता है इसी तरह यह मानव चित्त भी जैसी संगति करता है वैसा ही हो जाता है, कोयले के समान पापों की संगति से काला / पापी हो जाता है, अग्नि सम क्रोधादि अग्नियों की संगति से प्रज्ज्वलित अग्नि की तरह हो जाता है, विषय पंक की गंदगी से गंदा व निर्मल जल रूपी धर्म ध्यान की संगति से निर्मल हो जाता है, भोगों की व भोगी की संगति भोगी, योग साधना व योगी की संगति योगी, पुण्य व पुण्यात्मा की संगति पुण्यात्मा, पाप व पापात्माओं की संगति पापात्मा बनाने वाली होती है अतः प्राणी को वैसी ही संगति करना चाहिए जैसा वह बनना चाहता है, सिद्ध बनने के इच्छुक साधक को सिद्धों का ध्यान बहुत जरूरी है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

21

पाप मोचक व चित्त रोचक - चूर्ण

संसार का कोई प्राणी तीन प्रकार के पाप या दोष ग्रहण करता है, पाप ग्रहण करके पापी और दोष ग्रहण कर दोषी, अपराधों को ग्रहण कर अपराधी, गुनाह करके गुनहगार व गलती करके गलत आदमी हो जाता है।

भूतकाल में की गलती को छिपाने का उपक्रम, वह प्रकट न हो जाये यह भूतकालीन पाप है, वर्तमान काल में अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ यथानुरुप पालन न करना वर्तमान कालीन पाप है, और भविष्य काल में पाप करने की योजना भविष्यत् पाप है, इनसे बचने के आचार्य भगवंतों ने तीन उपाय बताये है - प्रथम अतीत काल के पाप से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित्त/ पश्चाताप करना चाहिए, प्रायश्चित करने से अतीत कालीन पाप धुल जाते है। वर्तमान कालीन पापों से बचने के लिए प्रभु प्रार्थना तथा प्रभु के सामने प्रतिक्रमण करना चाहिए इससे वर्तमान काल में चित्त पापों को ग्रहण न कर सकेगा और भविष्य कालीन पापों से बचने के लिए पाप का परित्याग और पाप सृजक कार्यों का व वस्तु का प्रत्याख्यान करना व अच्छे कार्य करने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए।

आचार्य वसुनंदी मुनि

22

सत्कर्म का बीज है - धर्म संस्कार

प्रत्येक माता - पिता का अपने बच्चों को सुसंस्कार देना आद्य कर्त्तव्य है, जन्म देना कर्त्तव्य नहीं यह तो वंश वृद्धि की प्रक्रिया है, यह प्रक्रिया तो पशु - पक्षी भी कर सकते है और करते भी है।

मानव जाति में चार पुरुषार्थो की मुख्यता है अतः हर एक माता - पिता को चाहिए कि वे अपनी संतान को धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चारों पुरुषार्थो की शिक्षा व संस्कार दे । धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ की शिक्षा व संस्कार इस भव और परभव में सुख का कारण है सिर्फ अर्थ (धन) कमाने की शिक्षा जीवन को व्यर्थ करने वाली है और सिर्फ काम पुरुषार्थ की शिक्षा जीवन का काम तमाम करने वाली है, धर्म के संस्कार सत्कर्म का हेतु है तभी अर्थ परमार्थ का कारण बन सकेगा ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

23

मेरा पूत सपूत ही नहीं सबूत भी है

पुत्र या पुत्री के जन्म से पूर्व यदि दम्पत्ति में लड़ाई हो तना - तनी हो, मन - मुटाव हो तो समझों उनके लड़के पैदा होंगे अर्थात् लड़के (लड़ाई करके) या लड़की पैंदा होंगी (लड़ाई की चाबी) किंतु जब दम्पत्ति भगवान के दूत या गुरु के दूत बनकर वंश वृद्धि करते है तब उनके घर पूत या सपूत पैदा होते हैं, वे सपूत ही आगे मुक्तिदूत होते या अभूत (अभूतपूर्व पूत) जैसे पहले कभी नहीं हुए अतः पूत (पवित्र धर्म भावनाओं के साथ) सद् संस्कारों से युक्त ही उत्पन्न करो जिससे वह तुम्हारे धर्मात्मा / धार्मिक होने का सबूत हो अन्यथा वह यमदूत या भूत की तरह तुम्हारी आत्मा पर सवार हो जायेगा फिर वह सपूत की नहीं कपूत की गिनती में आयेगा तब वे माता - पिता अपूत या निपूत होना चाहेंगे ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

24

सवर्ण का सत्कार

जीवन में सुकुल, सत्संस्कार, सम्पत्ति (जिनेन्द्र गुण रुपी) सद् संतान, संत समागम, शास्त्र श्रवण, शास्त्र के दर्शन, साधु सेवा, सुशिष्य, सुमित्र, सन्मार्ग का दर्शायक पूर्व सुकृत के प्रभाव से ही मिलता है। किसी भी कार्य की सफलता केवल भाग्य या केवल पुरुषार्थ से नहीं मिलती उसके लिए सदाचार, सद्भावना, सत्श्रद्धा, सद्विवेक, संयम, समता, सरलता, सहजता, सहयोग व शुभाशीष की भी आवश्यकता होती है यदि आप अपने जीवन को सफल - सार्थक, सदुपयोगी, सुख - शांतिमय बनाना चाहते हो तो हर सांस में सहासी, समझदार, सज्जन, संकल्पशील, सुकृतज्ञ, समता स्वभावी बन कर स्वकीय शाश्वत, शुद्ध स्वभाव की ओर गतिशील रहो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

25

सेवा संतो की करो सर्पो की नहीं

सज्जन पुरुष वह है जो संतो की सेवा करे और संत वह है जो दुर्जनों के कल्याण व उपकार की भी भावना भायें । संतपुरुष तो गाय की तरह होते है जो शुद्ध सात्विक अल्प भोजन करके कोटि गुणा महत्वपूर्ण बना कर लौटाते है, जैसे गाय घास के बदले दूध देती है, सीप पानी को मोती बनाकर, इक्षुदण्ड जल बिंदु को इक्षुरस बनाकर वापिस करता है, कदली पत्र उस जल बिंदु को कपूर बना देती है, इसी प्रकार संत अंजुलि भर लेकर अम्बुधि भर वापिस कर देते है, क्षारीय को भी मिष्ट बनाकर देते है, किंतु दुर्जन अच्छे को भी बुरा बना देते है अथवा सर्प दूध का पान करके उसे विष बनाकर वापिस लौटाता है। अपना भला चाहो तो परमार्थी संतों की सेवा करो, मात्र शब्दों के या अर्थ (धन) के संग्राहक महीधर सम दिखाकर अहिधर बन रहे है उनके जाल में मत फसों । जो शब्द धर्म के तथा जो अर्थ परमार्थ के कारण है उन शब्दार्थ - संयम धर्म व परमार्थ दाता को कभी मत भूलों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

26

सुख का अधिकारी

जहाँ सूर्योदय होता है वहाँ चंद्रोदय भी होता है, जहाँ सूर्यास्त होता है वहाँ चन्द्रास्त भी होता है, जहाँ रात होती है वहाँ दिन भी होता है, जहाँ प्रभात होता है वहाँ रात भी, जहाँ उषा काल है वहाँ संध्याकाल भी है, जिस नदी में बाढ़ आती है संभव है वह नदी सूख भी जाती है, समधारा में क्वचित् कदाचित् सरिता बहती है। सागर में होने वाला परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता, सागर में उफान नहीं आते अतः सागर कभी सूखता भी नहीं है। जो दुःखों के फल को भोगने को तैयार है वह सुख पाने का भी अधिकारी है, जो दुःखों के फल को व संघर्षो का समता से झेल सका हो वह ही सच्चे शाश्वत, स्वभाविक सुख को प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

27

अति में कोई धर्म नहीं

अति चिकनाई फिसलन का, अति रुक्षता अवरोधक का, अति उष्णता अस्तित्व के विनाश का, अतिशीत ऊर्जा विनाश का, अतिराग कर्म बंध का, अति द्वेष स्वभाव के विपरिणमन का, अति शीघ्रता शक्ति के ह्रास का, अति मंदता गन्तव्य के विस्मण का कारण है, अति में कोई धर्म नहीं होता । जिसने जिससे अति की उसकी उस विषय की इति (अंत) हो गई। धर्म का सेवन सदैव मध्यम भाव से करना चाहिए, वर्तमान काल में अति में जीने वाले अधिक है, मध्यम भाव के सेवन करने वाले अल्प है यथा कोई क्रिया में अति तो क्रियावादी, कोई अक्रिया में अति की तो अक्रियावादी, कोई शब्द में अति तो ज्ञानवादी, कोई अज्ञान भाव में अति अज्ञानवादी, कोई विनय में अति वैनयिक कोई अविनय में अति तो अहंकारी हो गये । देखो कुछ व्यवहार में अति कर रहे है कुछ निश्चय में तुम संतुलित जीवन जीओ, अपनी जीवन रुपी गाड़ी किसी भी ओर ज्यादा / अति मत झुकाओ ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

28

बनो तो ऐसे - यदि ऐसे नहीं तो नहीं

जीवन में श्रम करो भ्रम नहीं, रहम दिल बनो बहम दिल नहीं, मन को गुरु उपासना में लगाओ विषय वासना में नहीं, योगी बनो भोगी नहीं, उपयोगी बनो निरुपयोगी नहीं, धर्मलीन रहो अधर्म लीन नहीं, आत्म साधना करो जीवन विराधना नहीं, कर्म का नाश करो धर्म का नहीं, नरम रहो गरम नहीं, कायदा देखों फायदा नहीं, ज्ञानी और दानी बनो मानी नहीं, क्रोध को छोड़ो बोध को नहीं, काया व माया से राग छोड़ों धर्म रूपी वृक्ष की छाया से नहीं, वीतरागी को ध्याओ वित्तरागी को नहीं, धर्मानुरागी बनो दागी नहीं, गुणानुरागी बनो बागी नहीं, अंतरात्मा बनो बहिरात्मा नहीं, सच्चे इंसान बनो हैवान और शैतान नहीं, सदाचारी बनो कदाचारी नहीं, ब्रह्मचारी बनो व्याभिचारी नहीं, साधु बनो स्वादु नहीं, पुजारी बनो भिखारी नहीं, आराधक बनो विराधक नहीं, जिनभक्त बनो कमवख्त नहीं ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

29

गुरुचरण में ही

गुरुचरण ही भवदधि से तारण - तरण है, ये गुरु चरण ही सच्ची शरण है, गुरु चरण का वरण ही क्रमशः निश्चित रुप से मुक्ति वरण है, गुरु चरण में ही सच्चा मंगलाचरण है, गुरु चरण से ही शुद्ध होता अंतःकरण है, गुरु चरण में ही संभव समाधि मरण है, गुरु चरण में ही सदाचरण है, गुरु चरण में ही सम्यक् दृग बोध चरण है, गुरु चरण में ही पाप कर्मो का हरण है, गुरु चरण में ही कषायों का अपहरण है, गुरु चरण में ही पूर्वबद्ध कर्मो का क्षरण है, गुरु चरण में ही पुण्य प्रकृतियों का उत्कर्षण है, गुरु चरण में ही पाप प्रकृतियों का अपकर्षण है, गुरु चरण में ही अशुभ प्रकृतियों का शुभरुप संक्रमण है, गुरु चरण में ही स्वभाव की ओर गति शील अंतः करण है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

30

शत्रुता की जड़

यदि तुम जीवन भर शत्रुओं से रहित होकर जीना चाहते हो तो अपने सभी शत्रुओं का नाश कर दो, आप पूछेंगे कैसे नाश करें? तो सुनो - शत्रु को मारने से शत्रुता नहीं मिटती किंतु शत्रुता के मरने/ मिट जाने से शत्रु अवश्य मर जाता है। वह मित्र के रुप में उत्पन्न हो जाता है। शत्रुता की जड़ अहंकार की भूमि में रहती है वह मायाचारी की हवा, लोभ के प्रकाश एवं क्रोध व बैर की कार्बन - डाई - आक्साइड से जीवित रहती है, क्रोध एवं बैर की कार्बन - डाई - आक्साइड देना बंद करो, मायाचारी की हवा व लोभ का प्रकाश देना रोक दो, तृष्णा, ईर्ष्या, असहिष्णुता का जल व खाद देना भी बंद करो, तत्व विचार रुपी मट्ठा डालो, बारह भावना या वैराग्य भावना रूपी नमक डालो, धर्म ध्यान की धार से, संयम की आरी से उसे काटो, तप की अग्नि से उसे जला दो, तब तुम्हारे जीवन में किंचित भी शत्रुता नहीं रह सकेगी ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

31

सुख व संतोष का खजाना

जीवन में दो बातो का सदैव ख्याल रखो प्रथम शरीर की अनित्यता का तथा दूसरा आत्मा की नित्यता का । जीवन में मित्रों की संख्या वृद्धि के दो कारण है प्रथम मित्रों की गलतियों, अपराधों व दुर्व्यवहारों को भूल जाना तथा द्वितीय तुम्हारे प्रति बुरा करने वालों को भी मन से क्षमा कर देना । जीवन में दो बातों का पालन करो प्रथम इन्द्रिय व पाप पर नियंत्रण दूसरा प्राणी मात्र की रक्षा करना । चेतना के समग्र गुणों को प्राप्त करने के दो साधन है - प्रथम गुण ग्राहकता तथा दूसरी बात उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव । भव भ्रमण हेतु दो पैर है प्रथम राग तथा दूसरा द्वेष । जीवन में दो काम कभी मत करो प्रथम विश्वास घात तथा द्वितीय पर निंदा । दो बाते दुःख का कारण है - प्रथम स्वकीय कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना दूसरा अनाधिकारी चेष्टा करना। सबसे बड़े पाप दो है उनसे बचों मिथ्या धारणा तथा दूसरा है मिथ्या प्रवृत्ति । आत्महित हेतु दो मित्र है - प्रथम सम्यग्ज्ञान व दूसरा वैराग्य ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

32

झूठ का परिणाम

जिस प्रकार वैद्य, हकीम या डाक्टर के सामने झूठ बोलने वाला रोगी आरोग्य लाभ से, वकील से झूठ बोलने वाला क्लाइंट केस में मिलने वाली सफलता से, प्रभु से झूठ बोलने वाला भक्त आत्म वैभव से, मां से झूठ बोलने वाला पुत्र या पुत्री 'सद् संस्कारों से, पति से झूठ बोलने वाली पत्नी पति स्नेह/ आत्मीयता से, पिता से झूठ बोलने वाला पुत्र पैतृक सम्पत्ति से, शिक्षक से झूठ बोलने वाला विद्यार्थी शिक्षा से, ओझा या तांत्रिक से झूठ बोलने वाला व्याधि पीड़ित समुचित स्वास्थ्य लाभ से, ग्राहक से झूठ बोलने वाला दुकानदार व्यापारिक लाभ से, दुकानदार से झूठ बोलने वाला उपभोक्ता अच्छी वस्तुओं के लाभ से हाथ धो बैठता है किंतु गुरु से झूठ बोलने वाला शिष्य आत्महित, प्रभु मिलन, गुरुकृपा, एवं लोक प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

33

उनके कारण तुम पंगु हो जाओगे

जिन्हें खुद अपने आप पर और आप्त पर (खुद - खुदा पर) आत्मा - परमात्मा पर विश्वास नहीं होता उन्हें ही दूसरों पर विश्वास करना पड़ता है, दूसरों पर विश्वास करने से तुम पार नहीं हो सकोगे खुद पर विश्वास करो दूसरे कोई भी तुम्हें सहायक नहीं हो सकते उनके कारण तुम पंगु हो जाओगे । कोई कहे कि प्रभु पर विश्वास करने वाला ही भव पार हो जाता है उनसे हमारा यही कहना है कि प्रभु पर विश्वास मात्र करने से कोई भव पार नहीं होता इसके साथ आवश्यक है खुद की श्रद्धा भक्ति पर विश्वास रखना, खुद की आस्था ही तुम्हारी आत्मा का नाश्ता है और परमात्मा पर आस्था ही आत्महित का रास्ता है उससे ही मोक्ष का वास्ता होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

34 जैन मात्र क्रिया से नहीं भावों से भी बनो

कोई भी व्यक्ति धर्म के स्थान पर धर्म की क्रिया करने लगे तो इतने मात्र से वह धर्मात्मा नहीं कहा जाता अपितु धर्मात्मा तो वह कहलाता है जो मनसा, वाचा व कर्मणा धर्म के कार्यो में ही संलग्न रहता है, जिसकी आत्मा सदैव धर्म से आर्द्र रहती है। धर्म कोई पोशाक नहीं जिसे उतार लो और पहन लो धर्म आत्मा में उस प्रकार रहता है जैसे तिलों में तेल, जल में शीतलता, पुष्पों में गंध, घृत में स्निग्धता अतः धर्मात्मा प्राणी तो वहीं कहलाता है जिसके प्राणों में धर्म का वास हो, धर्मात्मा मात्र वचनों से, शरीर की चेष्टा मात्र से नहीं होता, जैन कुल में जन्म लेने मात्र से संपूर्ण रुप से जैन नहीं बन जाता, सम्पूर्ण व सम्यक् रुप से जैन बनने के लिए जैनत्व का अविनाभावी कर्म व भाव का होना आवश्यक है अन्यथा चेतना रहित मानव के तन मात्र को मानव मानने जैसा होगा ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

35 संसार का कडवा सत्य

एक पिता अपने पुत्र को अपने नियंत्रण में रखना चाहता है, किन्तु वह खुद अपने पिता के नियंत्रण में नहीं रहना चाहता, एक पुत्र अपने पिता से लाड - प्यार, धन सम्पत्ति व गलती होने पर क्षमा की अपेक्षा रखता है किन्तु वही पुत्र अपने पुत्र के प्रति वैसा व्यवहार नहीं कर पाता, एक पोता अपने दादा का समुचित सम्मान करने से कतराता है किन्तु वह व्यक्ति अपने पोते से मान - सम्मान, सेवा - शुश्रुषा की आकांक्षा/ अभिलाषा रखता है, एक स्त्री अपनी सासु मां की सेवा करने में आज्ञा पालन करने में कोई न कोई बहाना खोज लेती है किन्तु वही महिला अपनी पुत्रवधु से पूरे सम्मान पाने की भावना / कामना रखती है आज विश्व की प्रायः कर प्रत्येक महिला चाहती है कि उसका पुत्र श्रवण कुमार जैसा गुणज्ञ, आज्ञाकारी व मातृपितृ भक्त बने किंतु वही महिला अपने पति को श्रवणकुमार बनते हुए नहीं देखना चाहती।

36

एक पाती तेरे नाम

मैंने तुम्हारे लिए वही कुल, जाति, गोत्र दिया है जिसके तुम लायक थे, मैंने तुम्हारे हाथों की लकीर पर वही लिखा है जो तुमने लिखवाया था, मैंने तुम्हारे भाग्य में बह सब कुछ भर दिया जिसकी आपको चाहना थी, मैंने आपकी झोली में वह सब डाल दिया जो - जो आपने पूर्व में मांगा था, मैंने आपका उन्हीं पदार्थो से संयोग कराया है जिससे मिलना आप चाहते थे मैंने आपको उन पदार्थो को नहीं दिया जिसकी आपने उपेक्षा की थी, मैंने आपके समीप वही सब कुछ बनाया है जैसा चित्र आपने अपने चित्त से खींच कर भेजा था, मैंने तुम्हें वही रास्ता चलने के लिए दिया है जिस पर पूर्व से चले आ रहे हो या चलना चाहते हो, मैने तुम्हारे जीवन में वहाँ - वहाँ अंधेरा किया जहां - जहां तुमने दूसरों के दीये बुझाये थे, मैंने तुम्हारे शरीर के उसी हिस्से में रोग दिया जिनका तुमने पूर्व में दुरूपयोग किया था, मैनें तुम्हारे भले के लिए, हित व मंगल के लिए चाहा है किया है मेरी बात का विश्वास करो तथा मेरे इस पत्र को गोपनीय रखना मैंने तुम पर विश्वास कर यह पत्र लिखा है, आपकी याद में तडफती हुई - आपके दर्शनों की अभिलाषी आपकी ही आत्मा ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

37

कितना कृतघ्नी है तू

जब तुम गर्भ में आये तो मां ने नवमाह तक अपने उदर में रखा, जन्म के समय तुमसे ज्यादा वेदना तेरी मां ने सहन की, जन्म से ही उसने तेरे ऊपर स्नेह की वर्षा कर दी तेरे सम्पूर्ण दुःखों को अपने सुख के बदले मोल ले लिया, खुद गीले में सोकर तुझे सुखे में सुलाया, खुद भूखी प्यासी रहकर तुझे खिलाया - पिलाया, खुद अनपढ़ रहकर तुझे अच्छे स्कूल भेजकर पढ़ाया, खुद रोगी रहकर तुझे सदा निरोगी रखने का प्रयास किया, तुमसे बोलने के लिए, बात करने के लिए तरसते रहे तू बोलने में असमर्थ था तब तुझे बोलना सिखाया, तूने तोतली वाणी में जितनी फरमाईशें रखी उन सभी को पूरा किया अपना फर्ज निभाया किन्तु आज तू बोलना सीख गया है तो उनकी बोलती बंद कर दी, तुझे जिसने घर दिया, पर दिया, जड़ दिया आसान सफर दिया आज तूने उनका ही जीना दूभर कर दिया इससे बढ़कर भी आज तेरे पास २४ घंटे में से २४ मिनट भी अपने वृद्ध मां - बाप के लिए नहीं है, सोच तो सही कितना कृतघ्नी है तू ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

38

अब बोलो किसे करना चाहोगे?
अपना सर्वस्व समर्पण

जो आपकी खोमासी से आपकी तकलीफ या उसके रहस्य को न जान सके, जो आपकी मुस्कराहट के पीछे छिपे आँसुओं को न पहचान सके, जो आपकी मनः स्थिती तक न पहुँच सके, जो आपकी आँखो में चमक न ला सके, जो आँसुओं को पोंछने के वजाय आँसुओं के कारणों को दूर न कर सके, जिसके मन में आपका कोई स्थान नही, जिसकी याद में आँखे नम न हो, जिसकी शिकायतें आपके जीवन में कभी भी कम न हो जो स्वयं प्रेम को पाने का भिखारी हो, जो हृदय समर्पण करने में कंजूस है, जिसके नेत्रों में तुम्हे दूसरों की छवि बसी हुई दिखायी देती हो, जिसके जीवन में निःशब्द प्रेम की कोई कीमत नहीं, जो पदार्थो का हर समय मूल्यांकन करता रहता है, जिसके पास आपके लिए न मन में स्नेह हो, न समय हो, और न ही सद्भावना तो ऐसे व्यक्ति को भूलकर भी अपना समर्पण न करो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

39

औकात से ज्यादा प्रकाश भी

हे जिनेन्द्र देव ! हे मेरे परमात्मा ! ओ मेरी चेतना के शहंशाह ! ओ मेरे प्राणों के देवता । हे मेरे रुह के संवाहक ! हे मेरी अस्मिता के मसीहा ! हे मेरे आत्मन् खुदा ! मेरी तुमसे आत्मीय प्रार्थना है जिसे सुनो प्रभु, मेरी लाखों याचनाओ, करोड़ों मांगो और मित्रता के बाद भी आप मुझे मेरी औकात से ज्यादा कभी मत देना, मेरी जुवां से बड़ी बात न कहलवा देना, जिन सपनों को साकार न कर सकूं ऐसी रात मत देना, हे देव ! मुझे धन देने के साथ - साथ उदारता वाला मन भी देना, धन संग्रह की वृत्ति देना हो तो दान देने की प्रवृत्ति भी देना, यदि तर्क और मुक्ति देना है तो दुराग्रहों से मुक्ति भी देना, नेत्र विशाल और सुन्दर देना हो तो निर्विकार दृष्टि देना, सभी को मित्रवत् मान सकूं ऐसी आत्म ज्योति देना, विद्या, ज्ञान, हुनर, कला देना है तो विनय, परोपकार, सहज सरलता की नियति भी देना, हे जिन देव! आपको पाकर मैं निज जिन को पा सकूं ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

40

तमाम काम नहीं, काम का ही काम तमाम करो

अरे मानव ! तू मनु की संतान है, इस पृथ्वी का श्रेष्ठतम प्राणी है अतः तू अपने विवेक का उपयोग करते हुए मन - वचन - काय पर नियंत्रण रखते हुए ऐसे काम कर कि दुनियाँ में तुम्हारा नाम हो जाये, अच्छे कार्य करने से ही सुयश की प्राप्ति होती है तथा व्यक्ति महान बनता है अतः अच्छे काम करो और यदि नाम ही चाहना है तो जीवन में इतने सारे अच्छे काम करो कि तुम्हारा नाम सारे विश्व में ऐसा छा जाये कि जीवन में और कुछ काम करने की आवश्यकता ही ना पड़े, तुम्हारा नाम लेते ही दुनियाँ के भक्तों के बिगड़े हुए सभी काम हो जाये । अपने जीवन की सुबह ऐसी हो कि दुनियाँ की शाम हो जाये अर्थात् जीवन का प्रारम्भ धर्म से होता है, धर्म का प्रारम्भ ऐसे करो कि तुम्हे अपने संसार का अंत दिखाई देने लगे और अपने जीवन की शाम ऐसी हो कि जीवन राम हो जाये, प्रभु का नाम ऐसे लो कि मुक्तिधाम हो जाये ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

41

जल्दबाजी में नहीं बहुत सोच समझकर उठाओ

जीवन में इन कार्यों को कभी जल्दबाजी में या उतावलेपन में मत करो क्योंकि इन कार्यो में की गई जल्दबाजी या उतावलापन आपके लिए घातक एवं प्रतिकूलताओं, दुःखों का सामना कराने वाला हो सकता है प्रथम कदम - जब भी किसी कार्य करने के लिए कदम उठाना है उससे पहले सोचना बहुत जरूरी है, महापुरुष वे होते है जो उठाये हुए कदम को कभी वापस नहीं लौटाते किन्तु वे महापुरुष अपना कदम किसी कार्य को करने के लिए सहसा नहीं उठाते ।

द्वितीय है कसम :- पहले वस्तु स्थिति की समग्र जानकारी ले लो तभी अपनी बात कहो, महापुरुषों को कभी कसम खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती इसलिए अपनी कृति, प्रकृति ऐसी बनाओं कि जीवन में कभी कसम खाने की नौबत ही ना आये ।

तृतीय कलम :- जो भी कुछ लिखना हो बहुत सोच समझ कर लिखना ऐसा ना लिखों जिसको लिखने से धर्म का, सभ्यता का, संस्कृति का, सुसंस्कारों का, मान - मर्यादा का व जिनवाणी का लोप होता है, स्व - पर की शांति भंग होती है, अतः जब भी लिखने के लिए कलम उठाओं सकारात्मक लिखों, ऐसा लिखों कि तुम्हारे जाने के बाद भी दुनिया लेखनी से भव पार उतर जाये ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

42

सोच - चिंतन

मानव की सोच - शौच, शम, समत्व, समाधान, सहजता, सद्बोधता से मुक्त संयमित होनी चाहिए तभी वह स्वर्ग, शिव, सुख, शांति में सहायक हो सकती है, चिंतन चिंताओं का उन्मूलन करने वाला हो, चिंताऐं दुविधाओं से निष्पन्न होती है, जो व्यक्ति चिंताओं से रहित किसी निश्चित बिंदु तक पहुँच जाता है तब वह निश्चिंत हो जाता है, सम्यक् चिंतन तो तभी हो सकता है जब संयमी साधक चित्त को ही अपना तन समझे, जब तक तन को ही चित्त (आत्मा) मान लिया जाता है तब तक सम्यक् चिंतन का प्रादुर्भाव असंभव ही होता है, चिन्तन - चिन्मयता प्रदान करने वाला हो सद्चिंतन ही सद्ध्यान की आधारशिला है यह सद् चिंतन ही सद्ध्यान का सुसमर्थ कारण है, सम्यग्ज्ञान के बिना इसका प्रकट होना असंभव है, तत्त्वज्ञान का मुहूर्मुहु प्रेक्षण है सद् चिंतन/ सद्ध्यान ही सद्चिंतन की कोटि में आता है, यही कर्म विरेचन का कारण है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

43

हमेशा में ही क्यों?

मानव के जीवन मे जब प्रतिकूलताऐं आती है तब सज्जन, साहसी, समझदार, स्वाभिमानी, साधर्मी उन प्रतिकूलताओं में अपने आपको सम्हालने का प्रयत्न करता है, उन प्रतिकूलताओं का मूल कारण खुद को ही स्वीकार करता है खुदा को दोष नहीं देता, यही समझदार की सही सूझ - बूझ है किन्तु अज्ञानी पुरुष प्रतिकूलताओं में अपनी आपत्ति - विपत्ति व दुःख - संकटों का कारण सदैव दूसरों को ही कहता है, वह कहता है ऐसा दुःख मुझे ही क्यों? किसी दूसरे को क्यों नहीं? ऐसा सोचते समय वह भूल जाता है कि धर्म का विरोध, पाप का कार्य अहंकार युक्त होकर मैंने ही तो किया था इसलिए मुझे दुःख मिला है, इसमें किसी का कोई दोष नहीं है, उसे अपनी उपलब्धिओं का कारण कभी कोई दूसरा नहीं दिखा तब प्रतिकूलताओं का सेहरा दूसरों के सिर पर क्यों? हर बार में ही क्यों? समाधान अंदर से मिलेगा हर बार मैंने ही गलती की है इसलिए तो मुझे यह मिला है, अब भी अपनी गलती दूसरों पर थोप कर गलती कर रहा हूँ मुझे इससे बचना चाहिए।

आचार्य वसुनंदी मुनि

44

खण्डित न होने पाये - प्रतिष्ठा तुम्हारी

प्रतिष्ठा का अर्थ है स्व - पर की दृष्टि में पूज्य हो जाना, यद्यपि "प्रतिष्ठा" शब्द बुद्धि वाच्य है, हमारी बुद्धि में यह समहित हो जाये कि यह पूज्य हो गया, जीवंत पुरुष हो या बिम्ब, पूज्यता का आंकलन प्रतिष्ठित व पूज्य पुरुष ही कर सकते है। लघु या क्षुद्रजन पूज्यता व अपूज्यता का सही मूल्यांकन कैसे कर सकते है। क्या कभी ओस बूंद सागर की गहराई नाप सकती है या अणु किसी सुमेरु पर्वत की समग्रता जान सकता है? नहीं ! इसी तरह पूज्यता व प्रतिष्ठा का सही मूल्यांकन तो वही कर सकते है जो स्वयं प्रतिष्ठित व पूज्य हों, यह प्रतिष्ठा किसी अमूल्य निधि से कम नहीं है इसे जीवन भर की साधना से हासिल किया जाता है इसलिए प्राणपन से इसकी रक्षा करनी चाहिए, भले ही तन, मन, व धन खण्डित हो जाये किन्तु अपनी प्रतिष्ठा खण्डित नहीं होनी चाहिए । यदि प्रतिष्ठा खण्डित हो गई तो वर्षों तक पूज्यता को प्राप्त बिम्ब भी हेय और त्याज्य बन जाते है, खण्डित व प्रतिष्ठित बिम्ब भी आंखों से ओझल कर गहरे जल या अंध कक्ष में रख दिये जाते हैं इसलिए हर विवेकी सज्जन पुरुष का प्रमुख दायित्त्व यही है कि वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उसकी प्रतिष्ठा खण्डित होती है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

45

केवल धन कमाना ही नहीं धर्म में लगाना भी सीखो

आज के युग में धन तो पूर्व पुण्य के उदय से कोई भी कमा सकता है, वेश्या, भाण्ड या विट् पुरुष भी पर्याप्त धन कमा लेते हैं अथवा चोर, तस्कर भी अपनी पेटियाँ भर लेते हैं, या अन्यायी शासक या प्रशासक भी धन के भण्डार लगा लेते हैं, या अवैद्य व्यापार धंधे वाले भी धन संग्रह कर लेते है या जघन्यतम अपराध करके भी धन कमाया जा सकता है किंतु हमारा आपसे कहना है कि केवल धन कमाने की कला सीखना ही पर्याप्त नहीं है उसे अच्छे कार्यो में, धर्म के कार्यो में लगाना भी सीखिये अन्यथा अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह में प्रवेश तो कर जाओगे किन्तु वहाँ से निकल नहीं पाओगे, जिसके पास धन को व्यय करने की समीचीन बुद्धि नहीं है वह धनी धन कमाने वाला, धन संग्रह करने वाला या अतिभोग भोगने वाला मृत्यु उपरान्त दुर्गति का ही पात्र बनता है अतः अपने बही - खाते में शुभ - लाभ के साथ - साथ शुभ खर्च लिखना प्रारंभ कर दीजिये, शुभ का लाभ ही लाभ है और शुभ कार्यों में धन खर्च करना महालाभ है धन कमाकर रावण, कंस, कौरव, सिकन्दर, हिटलर, नेपोलियन बोनापार्ट आदि तो बन सकते है किंतु भरत चक्रवर्ती, पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर, चंद्रगुप्त, भामाशाह, अमरचन्द दीवान, बनारसीदास, हरजसराय, पाहिल श्रेष्ठी, चामुण्डराय, हुक्मचंद, देवपत, खेवपत नहीं बन सकते ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

46

जिद्दी बनो तो ऐसे

समीचीन, संयमित, सुदढ़ एवं लक्ष्य प्राप्ति की अचूक कल्पना/ कामना / भावना का नाम संकल्प है, संकल्प में विश्व की संपूर्ण शक्तियों का वास होता है, संकल्पवान व्यक्ति किसी के हटाये जाने पर पीछे नहीं हटता, चाहे सारा विश्व ही उसका विरोधी क्यों न हो जाये, किन्तु वह नदी जैसा संकल्प लेकर आगे बढ़ता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, नदी विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों से गुजरती हुई आखिर में समुद्र में मिलकर समुद्र बन ही जाती है, जो समीचीन जिद्द करने वाले सज्जन पुरुष रहे उन्होंने सामान्य व्यक्ति के लिए जो असंभव काम थे उन्हें संभव कर दिखाया, वे धुन के पक्के जिद्दी पुरुष विश्व के लिए एक आदर्श बन गये, एकलव्य ने मिट्टी की ही मूर्ति बनाकर (शिक्षा प्राप्त करने की) जिद्द को पूरा किया, शबरी ने श्रीराम को अपने आश्रम तक बुला लिया, भरत की जिद्द ने श्री राम चंद्र से राज्य संचालन हेतु खडाऊँ प्राप्त कर ली, विमलवाहन ने समवशरण के दर्शन कर लिये, गर तुम्हें कुछ करना है या बनना है तो तुम सम्यक् जिद्दी बनों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

47

लक्ष्य ही नहीं मार्ग भी समीचीन हो

जिस व्यक्ति में स्वयं का साहस नहीं होता वह व्यक्ति दूसरों का सहारा खोजता है, दूसरों पर बोझ बनता है, भीड़ में छुपने का प्रयास करता है, अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर थोपने का प्रयास करता है। अथवा उन कार्यो को टालने का प्रयास करता है किन्तु जो व्यक्ति अदम्य साहसी हो उसे सम्यक् मार्ग दर्शन देने वाला मिल जाये, वह अपनी शक्तियों का पूर्ण उपयोग करके विश्व की कोई भी बड़ी जंग जीत सकता है, विश्व का कोई भी बड़े से बड़ा काम कर सकता है यदि अंतर में अदम्य साहस है तो मार्ग की प्रतिकूलता व व्यवधानों की चिंता क्यों? अदम्य साहसी जहाँ भी कदम रखता है पृथ्वी अपना सौभाग्य मानती है, प्राकृतिक पदार्थ उसकी सेवा में स्वतः ही समर्पित हो जाते है, वह अकेला ही चलता है मंजिल की ओर, पहला कदम वह भले ही अकेला उठाता है किंतु अंतिम कदम तक उसके साथ बहुत बड़ा काफिला हो जाता है, जीवन को वरदान स्वरुप बनाना चाहते हो तो अदम्य साहस के साथ आगे बढ़ो, समीचीन लक्ष्य समीचीन मंजिल से ही प्राप्त होगा ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

48

लगे रहो लगन से

एक कहावत है - "लगे रहो लगन से तो अमृत वरसेगा गगन से" जो व्यक्ति निष्प्रमादी हो, कार्य सिद्धि हेतु अपना पसीना बहाने तैयार रहते है व सम्यक् फल पाने में भी समर्थ होते है, लगा हुआ व्यक्ति वृक्ष के पुष्प व फल पाने की तरह से जीवन में भी उपलब्धियों के पुष्प व फल प्रचुर मात्रा में प्राप्त कर लेता है। क्षणिक उपलब्धि पर डींग हांकने वाला महान उपलब्धि को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है, तुम्हें दूसरों के कार्यो में नुक्ताचीनी नहीं करना है, दूसरों की कमी नहीं देखना है, स्वयं की कमी खोजो, अपनी कमियों की निंदा करो ।

49

निरन्तर उद्यमशीलता

चलती हुई चींटी अपने जीवन काल में सैकड़ो मील चल सकती है न चलने वाला गरुड पक्षी एक कदम भी नहीं चल सकता, निरन्तर धन कमाने वाला एक दिन अपने मनोनुकूल धन प्राप्त कर लेता है, एक - एक पेड़ लगाने वाला वागवान पूरा बगीचा लगाने में समर्थ हो जाता है, एक - एक ईंट को जोड़ने वाला इंसान एक भव्य महल बनाने में समर्थ हो जाता है, एक - एक अक्षर पढ़ने वाला बालक बहुज्ञान व बहुभाषाविद् बनने में समर्थ हो जाता है, एक - एक बूंद का निरन्तर किया गया संग्रह कलश को पूरा भर देता है, एक - एक तिनके से झाड़ू बन जाती है, एक - एक तिनका जोड़कर चिड़िया घोंसला बना लेती है, एक धागा निरंतर जोड़ने से वस्त्र बन जाता है, एक - एक बुराई का परिहार करने वाला प्राणी दोषों से रिक्त हो जाता है, एक - एक गुण का संग्रह करने वाला गुणाधिक / सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा बन जाता है, इसलिए जीवन में जो लक्ष्य पाना चाहते हो तो उसके लिए निरंतर समीचीन रुप से पुरुषार्थशील रहो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

50

सफलता का सूत्र

जीवन के परिणामों में परिवर्तन लाने के लिए अपनी जीवंत प्रवृति को एवं आत्मा के परिणामों में परिवर्तन लाना बहुत जरूरी है, यदि आप अपनी प्रवृत्ति को न बदलने के लिए संकल्पित है तो फल परिवर्तन की आशा न रखें, अपने जीवन की गाड़ी को एक ही स्पीड (गति) से न चलाओ, जीवन में कभी उतार आता है कभी समतल, कभी अच्छा मार्ग होता है तो कभी खराब भी होता है, जब मन कमजोर होता है तब अच्छा कार्य भी अच्छा नहीं लगता, जब मन उत्साहित, उल्लसित एवं आनंदित होता है तब कठिन से कठिन कार्य भी सरल से भी सरल हो जाता है। प्रत्येक कार्य जो हम कर रहे है उसमें सफलता मिलेगी या नहीं इसका एहसास हमें स्वयं - परिणाम आने से पूर्व हो जाता है, उत्साह वृद्धि कार्य की सफलता व उत्साह में ह्रासता आना कार्य की असफलता के संकेत है, यदि प्रत्येक शुभ कार्य में सफलता चाहते हो तो प्रत्येक कार्य को उत्साह एवं आनंद के साथ कीजिये ।

51

जिन्हें खुद पर विश्वास

जिन्हें खुद के पैरों पर विश्वास नहीं तो मील के पत्थर उन्हें मंजिल तक नहीं पहुँचा सकते, जिन्हें स्वयं के हाथों पर विश्वास नहीं वे हाथों से शुभ कार्य नहीं कर सकते, जिन्हें अपनी इन्द्रियों पर विश्वास नहीं वे न तो अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण कर सकते है और न ही उन्हें सार्थकता प्रदान कर सकते है। कार्य की सफलता के लिए सबसे पहली शर्त है आत्मविश्वास, दूसरी शर्त है संकल्प की दृढ़ता, तीसरी है निरंतर उद्यमशीलता, चतुर्थ है अंतरंग उत्साह की निरंतर वृद्धि, पंचम है सहयोगी के प्रति कृतज्ञता । जिन्हें खुद व खुदा पर विश्वास नहीं होता वे सफलता से अवश्य ही वंचित रह जायेगे, खुद पर विश्वास के अभाव में व्यक्ति मुर्दा तुल्य हो जाता है, और खुदा पर विश्वास के अभाव में उसे अजन्मा ही कहना चाहिए, प्रभु परमात्मा के प्रति विश्वास होने पर ही हमें अपने अस्तित्व का बोध होगा, स्व अस्तित्व का बोध ही विश्व के अस्तित्व का समग्र बोध करने में समर्थ है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

52

दोनों है जरूरी

प्रत्येक प्राणी के जीवन में दो घटक होते है, प्रथम भाग्य दूसरा पुरुषार्थ, इन दोनों के अतिरिक्त अब किसी तीसरे घटक की कोई आवश्यकता नहीं है, इन दोनों की समीचीनता और अनुकूलता ही कार्य की सफलता की जननी है। जिस प्रकार रथ के संचालन में दो पहिये आवश्यक होते है, नदी के बहने हेतु दो किनारे अनिवार्य है, बिजली के जलने में करेन्ट व अर्थ के दो वायर आवश्यक होते है मुद्रा, पैसा इसके भी दो रुप होते हैं - टेल व हैड, एक पक्ष से वह मुद्रा पूर्ण नहीं होती । किसी भी वस्तु की दो सतह होती है प्रथम ऊपरी दूसरी अंतर की अथवा हर वस्तु के दो रुप है एक बाह्य का एक अंतरंग का । पक्षी के दो पंख, मानव के दो पैर, ज्ञान - दर्शन चेतना, दो नेत्र दोनों का समान महत्व है, उसी प्रकार कार्य की सफलता में बाह्य हेतु जो सबको दृष्टि गोचर होते है वह पुरुषार्थ एवं अंतरंग का हेतु है भाग्य । निमित्त व उपादान भी समान रूप से कार्य की सफलता के हेतु है किसी के महत्व को कम नहीं आँकना चाहिए अन्यथा हम सत्य से भटक जायेंगे ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

53

घड़ी को हर घड़ी देखों

बंद घड़ी भी अहोरात्रि में दो बार या एक बार सही समय प्रदर्शित कर सकती है किन्तु गलत चाल में चलने वाली घड़ी कभी समय नहीं दे पायेगी जब तक सही मार्ग और अनुकूल साधन न मिले तब तक चाहे विश्राम करते रहो किन्तु गलत रास्ते पर चलना तो अभिशाप ही है सही रास्ते को प्राप्त करके भी जो किसी डर से शर्म से, लोभ से, कषाय से, जिद्द से, प्रमाद से सही रास्ते पर कदम नहीं बढ़ाते है वे जीवन में कभी अपनी मंजिल को नहीं पा सकते

"टिक - टिक करती घड़ी सभी को सबक यही सिखलाती है।
करना है सो जल्दी करलो घड़ी बीतती जाती है।।
"बीता समय तो निश्चित था आगे का काल अनिश्चित है।
वर्तमान काल को करो सार्थक तभी सफलता निश्चित है।"

जीवन में मिलने वाले फूल व कांटो को समान भाव से देखता हुआ आगे बढ़ता है वह आत्मदृष्टा तत्त्वज्ञाता अपनी मंजिल को नियम से प्राप्त करके ही रहता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

54

बाधाओं को बाधित कर दो

जो रहता है सीधा साधा, दूर रहती है उससे बाधा । "श्रद्धा भक्ति समर्पण से जिसने गुरु/ प्रभु को आराधा उसी भक्त के पास कभी भी आ नहीं सकती है बाधा ।" बाधाओं की नहर हो या नाला झील हो या नदी, सड़क हो या पटरी, तुम्हें पार तो करनी पड़ेगी यदि बीच में फंसे तो वाधा के बीच में अस्तित्व को ही खो बैठोगे, हिम्मत के साथ पार करोगे तो बाधाऐं स्वतः रास्ता छोड़ देगी जो लहरें तुम्हें बाधा पहुँचाने आयी थी वे लहरें ही पथिक को मंजिल/ किनारे तक पहुँचाने में सहायक बन जाती है। बाधाओं से न घबराने वाला सिकन्दर अल्पायु में ही कई देशों का विजेता बन गया जब उसने बाधाओं को बाधा मान लिया तब उसे मृत्यु के मुख में प्रवेश करना ही पड़ा । मैं समझता हूँ कि कोई बाधा हमारे जीवन में तब तक बाधक नहीं बन सकती जब तक कि हम उस बाधा को बाधा न स्वीकारे, स्वीकार करने पर ही तो मित्र - मित्र, शत्रु - शत्रु दिखायी देता है, न स्वीकार करने पर सभी समान दिखायी देते है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

55

जो दे रहे हो वही है

एक दिन में राजपथ पर देख रहा था एक बैलगाड़ी में भूसा जा रहा था और भूसा खरीदने के इच्छुक उससे भूषा ले रहे थे, टैक्टर की ट्रोली में ईंटे भरी है कुछ लोग उनसे ईंटे ले रहे है, चार पहिये के ठेले पर एक सब्जी बेचने वाला सब्जी बेच रहा था तभी वहाँ एक साईकिल वाला आइसक्रीम ले जा रहा था बच्चे उससे आइसक्रीम ले रहे थे, एक व्यक्ति ऊँट पर अनाज की बोरी ले जा रहा था अनाज के इच्छुक व्यक्ति उससे अनाज ले रहे थे, ग्वालिन दूध लेकर जा रही थी कुछ लोग उससे दूध ले रहे थे सभी महानुभाव अन्य ग्राहकों को वही वस्तु दे रहे थे जो उनके पास थी, जो वस्तु उसके पास नहीं है वह दूसरे को कैसे दे सकता है कटुभाषी के पास मिष्ट वचन नहीं है और मिष्टभाषी के पास कटुवचन अतः जिसके पास जो है वह वही तो दे सकता है अन्य नहीं कवि बिहारी लाल ने भी कहा है -

जैसी जाकी बुद्धि है तैसी कहे बनाय ।
ताको बुरो न मानिये लेन कहाँ सू जाय ।।

आचार्य वसुनंदी मुनि

56

ऐसी जिद्द अच्छी नहीं

ये तो आप भली भाँति जानते है कि नीम के वृक्ष पर आम नहीं आते, बबूल के वृक्ष पर बादाम नहीं फलते, अंगूर की बेल में खरबूजा नहीं लगेगा, अमरूद के पेड़ पर पपीता नहीं लगेगा, कौन नहीं जानता जामुन के फल जामुन के वृक्ष में ही मिलेगें, और सेब के वृक्ष पर सेब के फल । फिर भी न जाने तुम अपनी आदतों को क्यों नहीं बदलते हो? क्या तुम नहीं जानते हो कि विषय भोग में आत्मिक सुख नहीं है? क्या तुम नहीं जानते हो कि क्रोधादि कषाय आत्मा की घातक है? क्या तुम नहीं जानते कि हिंसादि पाप नियम से दुःख के कारण है? क्या तुम नहीं जानते कि शराब पीना, जुंआ खेलना आदि सप्त व्यसन दुःख के कारण है, क्या तुम नहीं जानते ईर्ष्या, विद्वेष, लोभ आदि विकारी भाव अशांति के कारण है। ये सब जानते हुए भी तुमने आज तक इन्हें छोड़ा कहां है? तुम्हारी करतूतों को देखकर मुझे ऐसा लगता है जैसे किसी व्यक्ति ने बबूल के पेड़ पर आम उगाने की जिद्द की है या जलमंथन से नवनीत या बालू पेलकर तेल पाने की आशा । क्या यह असंभव नहीं है? यदि है तो इसे छोड़कर सही राह पकड़ ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

57

जैनत्व से बनो जैन

अस्तबल में जन्म ले लेने मात्र से चूहा घोड़ा नहीं बन जाता और न ही सिंह की गुफा में जन्मा खरगोश सिंह हो जाता है, राजमहल के किसी कक्ष में जन्मा दासी पुत्र राजपुत्र नहीं हो जाता, और न ही सिंहासन बनाते समय उस पर बैठा बढई राजा हो जाता और न ही जंगल में जन्मा क्षत्रिय या राजपुत्र मलेच्छ हो जाता, जेल में जन्म लेने मात्र से वह बंदी या अपराधी नहीं हो जाता, इसी तरह जैन कुल में जन्म लेने मात्र से कोई सच्चा जैनी नहीं बन जाता जिस प्रकार कागज के हाथी या मानचित्र के घोड़े, दीवाल पर बने रथों पर सवारी नहीं की जा सकती और न ही मानचित्र की नदी में स्नान कर सकते है और न ही जलपान, चित्र में बने पर्वत पर चढ़ नहीं सकते उसी प्रकार नाम मात्र का जैनी – जैनत्व के फल को नहीं पा सकता, क्या पुस्तक में बने लड्डुओं को खाकर किसी की उदर पूर्ति / तृप्ति हुई है? अतः जैनत्व युक्त जैन का जीवन ही सार्थक है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

58

कैसे होगा सार्थक सत्संग

अपनी दुष्टता छोड़े बिना किसी भी श्रेष्ठ पुरुष की संगति कर लेने मात्र से वह दुष्ट श्रेष्ठ (शिष्ठ) नहीं हो सकता जिस प्रकार विष का त्याग किये बिना चंदन के वृक्ष से लिपटे सर्प चंदन जैसी सुगंध व शीतलता धारण नहीं कर सकते, मकराने के पत्थर पर बैठा कौआ सफेद नहीं हो जाता और न ही कोयला खड़िया की समीपता से सफेद हो सकता है। कोयले को सफेदी प्राप्त करने के लिए तथा कालिमा से बचने के लिए जलना जरूरी है सर्प को शांति धारण करने के लिए कांचुली नहीं विष त्यागना जरूरी है, दूध अपनी पर्याय को छोड़े बिना दही नहीं बन सकता और मिट्टी मिटने और पिटने की यातना सहे बिना मंगल कलश नहीं बन सकती, क्या गन्ने के खेत में उत्पन्न हुआ सैठा ईख की मधुरता को धारण कर सकता है? बिंदु मिटने पर ही सिंधु कहलाती है क्योंकि भगवान के मंदिर या किसी महात्मा के आश्रम में चोरी करने वाला चोर महात्मा या परमात्मा नहीं कहलाता, यदि जीवन में अच्छाइयों को ग्रहण करने की भावना है तो बुराईयों को त्याग करने का संकल्प ले, तभी सत्संगति सार्थक है।

59

ठोने पर कमल क्यों

संसार के अधिकांश प्रभु, गुरु और परमात्मा कमलासन पर ही विराजमान देखे जाते है, यदि हमें अपने तन को मंदिर बनाना है तो मन को कमल जैसा कोमल बनाना जरूरी है क्योंकि बिना आराध्य / इष्ट देवता / परमात्मा के कोई भी भवन मंदिर नहीं बन सकता, जिस व्यक्ति ने अपने हृदय को कमलासन बना करके अपने चित्त में परमात्मा की स्थापना की है आज नहीं तो कल वे भी कमलाधिपति या पद्मासना योगी तथा परमात्मा बनने में समर्थ होते है, फिर उन्हें भी भावी भव्य जीव अपने हृदय कमल पर विराजमान करेंगे शायद इसलिए जैन लोग अपने आराध्य की पूजा करते समय ठोना (पूजा के बर्तनों में काम आने वाला विशेष बर्तन जिसमें परमात्मा या आराध्य देव की स्थापना की जाती है।) पर कमल पुष्प का चित्र अंकित करते है मेरा आपसे इतना संकेत है कि आज तक ठोना पर कमल के चित्र बहुत बनाये किंतु अब अपने हृदय को कमल बना लो जिससे तुम्हारी आत्मा परमात्मा बन सके।

60

मानो दूसरों की भी

हम और आप सभी चाहते है कि सामने वाला हमारी बात माने, अरे हम सामने वाले के भले के लिए ही तो कह रहे है मेरा इसमें कोई स्वार्थ थोड़े ही है, मेरी दृष्टि में उन्हें ऐसा करना ज्यादा उचित रहेगा, अरे वह जरा सी बात सहन न कर सका, अरे उसे क्रोध बहुत जल्दी आता है, अरे वह तो किसी की बात मानता ही नहीं, अरे उसे समझाना तो बहुत कठिन है इत्यादि शब्द और वाक्य हम कई बार बोलते तो है किन्तु कभी अपनी ओर नहीं देखते, अपने बारे में दूसरों के दृष्टिकोण से नहीं सोचते। जीवन सदेव अपने मनोनुकूल नहीं होता, हर पिता आज्ञाकारी पुत्र चाहता है, अविनयी, अहंकारी, कदाचारी, क्रोधी, अवज्ञा करने वाला नहीं किन्तु ऐसे कितने पुत्र है जो अपने पिता के आज्ञाकारी, विनम्र, सेवाभावी व समर्पित हो । जीवन में सदैव मीठा खाने को नहीं मिलता कभी-कभी कड़वा भी स्वीकारना पड़ता है, जीवन कभी भी अपने बनाये नियम शर्तो पर नहीं चलता, कभी-कभी दूसरों की शर्ते भी स्वीकारनी पड़ती है।

61

अजब उपकार

मिश्री दूध, जल आदि पेय पदार्थ को मीठा कर सकती है किन्तु शर्त यह है कि वह पेय पदार्थ मिश्री आदि मिष्ट पदार्थो को अपने अंदर स्थान दे दें, उन्हें बिना किसी शर्त और आवरण के उनके साथ मिल जाए, मिश्री शक्कर आदि पदार्थ यदि अपने आकार व रस आदि को उसमें समर्पण करने तैयार हो जायें तो दूध या पानी मीठा दूध, मीठा पानी नाम पायेंगे, चावल दूध में घुल - मिलकर खीर बन जाते है यदि मिश्री सच्चिक्कण हो जायें और दूध ठण्डा हो तो मिश्री धुल न सकेगी या दूध सूख कर मावा बन गया है तब भी मिश्री धुल न सकेगी, मिश्री में घुलनशील का गुण हो तब ही वह अपनी मिठास दूसरों को दे सकेगी, दूध आदि में दूसरों को घोलने वाली तरलता भी हो इसी तरह हम दूसरों में घुलना या दूसरों को निज में अवगाहना देना, घुलना या घोलना भी सीखें तभी हमारा अस्तित्व विस्तृत होगा और मिष्ट भी बनेगा ।

62

परोपकार है सहज प्रवृति

मेघों का कार्य जल बरसाना है, सूर्य का प्रकाश देना, शैत्य का हरण करना, पुष्पादि खिलाना है, चंद्रमा का शीतल चाँदनी देना, कुमुदनियों को विकसित करना है, अग्नि का कार्य प्रकाश करना, तम हरना, भोजनादि पकाना, शीत हरना, ताप देना, इसी प्रकार वृक्षों का कार्य, पुष्प, फल, पत्रादि देना, आक्सीजन देना, छाया देना, पशु - पक्षी व रागगीरों को ठहरने का स्थान देना है, गर्मी - सर्दी - बरसात, को सहन करना है, धरती सबको स्थान देकर आनंदित होती है, आकाश सबको अवगाहन देता है ये इन सभी के स्वभाव है। ये सभी अपना - अपना कार्य करके किसी पर अहसान नहीं जतातें, इसी प्रकार साधु का कार्य निः स्वार्थ भाव से सभी का हित करना है, उपकारी का उपकार करने वाला साधु नहीं है, साधु तो वह है जो उपकारी व अपकारी का भेद किये बिना सबके उपकार की भावना भाते है अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञ होना सज्जनता की पहचान है, कृतघ्न होना दुर्जनता का लक्षण है, कृतज्ञों के लिए संसार में सर्वत्र उपकारी मिल जाते है, कृतघ्नों का कोई उपकार करना नहीं चाहता ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

63

सतां सूक्ति प्रवर्तते

संसार के अधिकांश प्राणी पेट के लिए जीते है, कुछ कम है जो प्रजनन के लिए आतुर है, उससे कुछ कम है जो पेटी भरना चाहते है, कुछ कम प्रतिस्पर्धा में तो कुछ पद व प्रतिष्ठा के लिए जीते है, किंतु ध्यान रखना पद, पैसा, पत्नी, पुत्र, प्रमाद, प्रमोद, प्रतिस्पर्धा, प्रमोह, प्रलोभ ये पाप के ही कारण है । पाप व परिग्रह का त्यागी ही पर्याप्त व पूर्णता को प्राप्त कर पूर्ण चंद्र सदृश विश्व प्रकाशी बन जाता है। जिस भव्य जीव ने इन सबके प्रति अपने चित्त में विरक्ति भाव को धारण किया है वही अपने जीवन में प्रतिमान या आदर्श बन सकता है, उसकी प्रतिभा का विकास होता है, वह अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ने में समर्थ हो जाता है, वह पुण्यात्मा महात्मा ही प्रमाणित होता है, परमेष्ठी कहलाता है उसके वचन ही प्रवचन होते है, वही प्राणी मात्र का हित करने वाला प्रबोध देने में समर्थ हो जाता है, प्रकृष्ट मार्ग प्रणेता भव्यों का प्रजापति पार्वतीश्वर (महादेव) कैलाश पति परमात्मा ऋषभदेव रुप सकल व निकल परमात्मा की दशा को प्राप्त कर सकता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

64

उघाड़ो मत उखाड़ो

कमजोर व्यक्ति कहता ज्यादा है करता बिल्कुल नहीं या अत्यल्प करता है, मध्यम व्यक्ति कहता भी है और शक्ति अनुसार करता भी है, किन्तु उधमी कहता बहुत कम है करता बहुत अधिक है, महापुरुषों को या परमात्माओं को कहना नहीं पड़ता उनकी चर्या ही उपदेश रुप होती है लोग उनकी चर्या की चर्चा व चर्या करते है किन्तु अद्यम व्यक्ति वे है जो दूसरों की बुराई कहते रहते हैं उन्हें सबके समक्ष प्रकट करते है अधमाधम वे है जो दूसरों के अविद्यमान दोषों को भी कहते है संसार के अधिकांश प्राणियों को दूसरों की गलती उघाड़ने की रहती है ऐसे व्यक्ति नियम से दुर्गति के पात्र बनते है, किन्तु महापुरुष - सज्जन पुरुष, संत, महात्मा,धर्मात्मा, समाज सुधारक व सेवक वे ही कहलाते है जो बुराईयों को उघाड़ते नहीं है अपितु बुराईयों को जड़ से उखाड़ते है और समाज में एक नया वातावरण निर्मित करते है वे स्वयं का या समाज का हित किये बिना शांति का अनुभव नहीं कर पाते, मेरा भी आपसे यही कहना है कि आप भी किसी की बुराई उघाड़ो मत अपितु बुराईयों की जड़ों को उखाड़ों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

65

तुम कौन सा हाथ आगे बढ़ाते हो - पानी का या....

शास्त्रों में ज्ञानी और अज्ञानी की बहुत परिभाषाऐं, व्याख्याऐं एवं लक्षण दिये है कोई कहता है कि जो तत्त्ववेत्ता है वह ज्ञानी है तो कोई कहता है जिसे आत्म बोध है वह ज्ञानी है कोई कहता है जिसे भेद - विज्ञान हो गया वह ज्ञानी है कोई कहता है कि जो हर आत्मा को शक्ति रुप परमात्मा मानता है वह ज्ञानी है, कोई कहता है सम्यक्दृष्टि जीव ज्ञानी है, कोई कहता है जो संन्यासी है वह ज्ञानी है, कोई कहता है जो विषय - कषाय, आरंभ - परिग्रह, पाप - अभिशाप से मुक्त है वह ज्ञानी है, कोई कहता है तीन गुप्ति धारक ज्ञानी है कोई कहता है सम्यक्ज्ञान को धारण करने वाला ज्ञानी है, कोई कहता है केवलज्ञान जिसे प्राप्त हो गया है अर्थात् जो सर्वज्ञ हो गया है वह ज्ञानी है, इस प्रकार ज्ञानी की बहुत परिभाषाऐं है किंतु एक स्थान पर इंसान के दो चित्र बने थे उन चित्रों में इंसान के एक हाथ में पेट्रोल का कटोरा था व दूसरे हाथ में पानी का, सामने आग लगी है, जिस चित्र पर पानी वाला कटोरा आगे है उसके नीचे ज्ञानी ने लिखा था व जिसका पेट्रोल के कटोरे वाला हाथ आगे था उसके नीचे अज्ञानी ने लिखा था क्षमा पानी है क्रोध पेट्रोल ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

66

संभाल लो - मन को या माहौल को

संसार में दो प्रकार के मानव होते है एक कुशल दूसरे अकुशल जो हर परिस्थिति में अपनी और दूसरों की शांति बनाये रखते है वे कुशल है तथा जो स्वयं को शांत नहीं रख पाते, परिस्थिति के अनुसार जिनका मन उत्तेजित हो जाता है तथा कभी - कभी अपनी नादानी के या भ्रम के कारण दूसरों की शांति भंग करने पर उतारु हो जाते है वे अकुशल है। जो दूसरों को अपने अनुसार चलाने की कोशिश करते है उन्हें अशांति का सामना करना ही पड़ता है, किंतु जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर प्रवृत्ति करते है वे अशांति के वातावरण में भी शांति का अनुभव कर सकते है, अपनी और दूसरों की शांति भंग न हो इसके लिए छोटा सा उपाय है - वह यह है कि माहौल बिगड़ ही न पाये और यदि बिगड़ रहा है तो उसे संभालो गर माहौल को नहीं संभाल सकते तो अपने मन को संभाल लो जो व्यक्ति बाहर से आने वाली प्रतिकूलता को रोकने में समर्थ नहीं है तो उसे चित्त के कपाट बंद कर लेना चाहिए ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

67

मान लो या मौन लो

जीवन के कई बार विवाद या बहस की स्थिति बन जाती है, धर्मात्मा वह है जो विवाद नहीं करता व स्याद्वाद का आश्रय लेकर संवाद करता है, स्याद्वाद का अर्थ है - कथनूचित् बात ऐसी भी है अतः जैन दर्शन के अनेकांत धर्म को समझने व कथन करने के लिए स्याद्वाद एक पगदंड़ी है वाग्जाल रुपी संसार में स्याद्वाद रुपी पगदंडी का सहारा लेकर ही सत्य रुपी लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है, विवाद की स्थिति होने पर सामने वाले की अपेक्षा से समझने की कोशिश करो, उस पर अपनी बात जबरदस्ती लादने का दुःसाहस मत करो अन्यथा आपको संक्लेशता पैदा होगी । सामने वाले की बात को मान लेने से आप विवाद से बच जायेंगे यदि सामने वाले की बात बिल्कुल निराधार या अपेक्षा विहीन या पूर्ण असत्य है और वह आपकी सुनने को तैयार नहीं है और आप उसे समझाने का प्रयास करते है तो भी आपकी शांति भंग होगी अतः उस परिस्थिति में आपको मौन का सहारा लेना चाहिए वह मौन सर्व कार्य सिद्ध करने वाला है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

68

आँ खों में भी जगह नहीं

जब व्यक्ति नाभि कमल से हँसता या मुस्कराना प्रारंभ करता है तब शरीर का रोम - रोम पुलकित हो जाता है, रोग निरोधक क्षमता बढ़ती है, धर्म ध्यान वृद्धि को प्राप्त होता है, कषाय मंदता को प्राप्त होती है, मन पापों से, वासनाओं से, इन्द्रिय विषयों से एवं भय से मुक्ति का अनुभव करता है, मुस्कराहट किसी अच्छी बात को सोचकर, अच्छे कार्यो को देखकर, अच्छे शब्दों को सुनकर, स्व - पर हित कार्य करने पर सहज ही आ जाती है। किसी के स्वागत में प्रस्तुत की गई मुस्कराहट पूरे वातावरण को ही प्रेम से महका देती है आपकी मुस्कराहट को देखकर आपके मित्र, बंधु - बांधव ही नहीं कभी - कभी शत्रु भी मुस्करा जाते है, वृक्ष भी आनंद का अनुभव करते है आपके अंदर से विस्तृत प्रशस्त, मधुर, आनंद प्रदायी हल्की, पाप - ध्वंसक वर्गणाऐं दूसरों की मुस्कराहट में वैसे ही निमित्त बन जाती है जैसे कमलों को खिलाने में सूर्योदय। दूसरी ओर आपके रोने में कोई आपका साथ नहीं देता, दिल से निकलने वाले आँसुओं को आँखें भी बाहर गिरा देती है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

69

अभी वे जागे नहीं

संसार में कुछ लोग ऐसे है जो सदैव दूसरों की निंदा करने में भी आनंदानुभूति कर रहे है तो कुछ ऐसे है जो अपनी प्रशंसा करते - करते नहीं थकते, उन्हें अपनी प्रशंसा स्वयं करने में या दूसरों के द्वारा सुनने में बड़ा आनंद आता है, तो संसार में एक वर्ग ऐसा भी है जो दूसरों की प्रसंसा करने में संलग्न है संभव है वे दूसरों की प्रशंसा करके अपने लोभ को शांत करना चाहते है, उनसे कुछ प्राप्त करने की आशा लगाये बैठे है तो एक वर्ग इस प्रकार भी है जो स्वयं की ही दिन रात निंदा करने में लगे है, वे अपनी निंदा को ही धर्म मान रहे है अतः अपनी अच्छाईयों को प्रोत्साहन देने में भी असमर्थ है,स्व प्रशंसा व पर निंदा करने वाले अहंकार में पतित हो अपने उभय लोक बिगाड़ रहे है, दूसरों की प्रशंसा करने वाले स्वार्थ मुक्त हो उन्हें पदच्युत कर रहे है, दुनिया कहती है ये सब अभागे है किंतु मुझे लगता है कि ये लोग अभागे नहीं है सत्य तो यह है कि वे अब तक जागे नहीं है, सोये पड़े है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

70

जो दोगे सो पाओगे

धरती के हृदय का सिंचन कर और उसमें हल चलाकर अपनी समस्या का हल खोजने हेतु उसके वक्ष में बीज वपन करता है, उसकी रक्षा करता है, उचित खाद पानी की भी व्यवस्था करता है वह कृषक जितना भूमि को कर्षण करता है उससे कई गुणा अधिक अपने चित्त का भी कर्षण करता है जैसे भूमि से कंकड पत्थर अलग करता है वैसे ही चित्त में से भी कषाय व पाप भावों को अलग करता है, चित्त में भी उपकार, पुण्यभाव, दान, प्रेम वात्सल्य का नीर, खाद, प्रकाश व वायु भी देता है तब खेत की तरह चित्त में भी अच्छी फसल लहराने लगती है, किसान की मेहनत, निष्ठा, धैर्य, साहस व विवेक पूर्ण किया गया पुरुषार्थ सफल हो जाता है किंतु खेत वही फल देता है जिसके बीज बोये गये थे इसी प्रकार चित्त में जो तुम बोते हो चित्त उसे ही खेत की तरह कई गुणा करके वापिस लौटा देता है, इस संसार में कुँए की आवाज की तरह तुम्हारा दिया हुआ ही वापिस मिलता है यह शाश्वत सिद्धांत है जो दोगे सो पाओगे।

आचार्य वसुनंदी मुनि

71

और कुछ भी नहीं है - खोने के लिए

जो व्यक्ति सब तरफ से हारा हुआ है, पाप कर्मो का मारा हुआ है वह बेचारा और बेसहारा दर-दर की ठोकरे खा रहा है, उसका धन भी नष्ट हो गया, तन भी रोगी है, परिजन पुरजन भी साथ छोड़ गये, स्वजन उसके लिए दुर्जन बन गये है जहाँ कही भी जाता है दुत्कार दिया जाता है कभी वह इसी मोहल्ले में धर्म ध्यान पूर्वक सबका भला करता था, सबको भला लगता था आज तो उसकी अच्छी क्रिया भी सबको बुरी लग रही है, अच्छी बात भी चुभ रही है आज वह तुम्हारे पास आया है किसी आशा व उम्मीद को लेकर तुमसे सहायता माँगने, निज को अपनाने की कामना लेकर, नयन झुकें है, आँसु रुके है, पैर जमे है, हृदय के भाव अनुत्पन्न आँसुओं से भरे है उसे यह सोचकर नहीं लौटाना कि जिसका सहारा न परमात्मा ने दिया न दुनियाँ ने उसकी क्या सहायता करूँ? बिना किसी स्वार्थ और प्रतिफल के तुम उसकी सहायता करो, यह सोचकर कि अब उसके पास कुछ भी नहीं है खोने के लिए। मात्र आपके प्रति विश्वास है यदि कुछ नहीं किया तो उसका तुम्हारे प्रति विश्वास टूट जायेगा।

72

मित्र हो तो ऐसा

"प्रभु मिले तो एक सुख, मित्र मिले तो चार ।
गुरु गुणों का कुंज है, दुःख नाशे सत्वार ।।

सच्चा मित्र संसार की सबसे बड़ी व जीवंत दौलत है, जिसके पास सच्चा मित्र नहीं वह संसार का सबसे कंगाल व्यक्ति है। मित्रता को निभाना भी एक तपस्या है, मित्र का लक्षण शास्त्रों में आचार्यो ने लिखा है - जो अपने मित्र को पाप कार्यो से, गलत राह पर चलने से बचायें, गुप्त बाते प्रकट न करे, विश्वस्त हो, हित के मार्ग पर लगाने वाला हो, बिना झिझक सारी बातें जिससे कह सके, जिसे देखकर आत्मा में अपनत्व का विश्वास हो, जिसने हमारे मन को जीत लिया है वही सच्चा मित्र है अथवा मित्रता शब्द में तीन अक्षर है

मि - मिलनसार, मिष्टभाषी, मितव्ययी
त्र - त्राता (रक्षक) हो, जिसे देखकर तृप्ति हो
ता - तारने वाला हो ।

जो निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा भी प्रशंनीय होता है, ऐसा मित्र सब कुछ लुटाने पर भी मिल जाये तो सस्ता है मित्र के लिए प्राण देने वाले तो बहुत है पर ऐसा मित्र मिलना कठिन जिसके लिए तन, मन, धन, वचन व जीवन दिया जा सके ।

73

दहाड़ो मत पछाड़ो

कुछ लोगों की आदत होती है बड़ी - बड़ी डींग मारने की, वे समझते हैं कि बड़ी बातों करने से दुनियां हमें बड़ा आदमी समझेगी किन्तु ध्यान रखना बड़ी - बड़ी बातें से कोई बड़ा आदमी नहीं बनता बड़ा आदमी बनने के लिए बड़े - बड़े काम करने पड़ते है बाद में छोटे काम भी अच्छे तरीके से करने होते है, बड़े - बड़े काम करने वाला व्यक्ति अच्छा है या नहीं यह निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता किंतु एक बात निश्चित है अच्छा काम करने वाला बड़ा व्यक्ति जरूर होता है अतः जीवन में अच्छे काम करो और अच्छी तरह से करो, ढपोर शंख की तरह केवल आश्वासन मत दो अपितु काम करके बताओ, काम करने में समर्थ व्यक्ति दहाड़ता नहीं है वह कर्म रुप पर्वतों को उखाड़ता है व पाप कर्म रुपी शत्रुओं को पछाड़ता है, मेरा आपसे मात्र इतना कहना है कि जीवन में केवल दहाड़ों मत परेशानियों को पकड़ो और पछाड़ों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

74

ज्यादा कामयाबी मित्रों से नहीं

जीवन में कोई भी विशेष काम करना चाहते हो तो उसमें अपने स्वजन बंधु बांधवों का सहयोग आवश्यक होता है, मित्र यदि सच्चे दिल से साथ दें और स्वयं में उस कार्य को करने का जुनून सवार हो जाये तो संकल्प लेते ही कार्य की सफलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते है, सद्मित्रों का सच्चा साथ ईश्वरीय कृपा से भी बढ़कर वरदान सिद्ध हो सकता है, किंतु जिस व्यक्ति को जीवन में ज्यादा से ज्यादा कामयाबी मिली है तो वह उसके मित्रों से नहीं मिल सकती उन्होंने अतिरिक्त कामयाबी विरोधों के बीच में ही प्राप्त की, विरोध सहन से आत्मा की समग्र शक्तियाँ एक जुट हो जाती है, जो आज तक अप्रकट थी वे भी प्रकट हो जाती है, फिर संसार की कोई भी शक्ति उसे कामयाब होने से नहीं रोक सकती अच्छे कार्यो का विरोध होता है किंतु तुम उसकी चिंता न करो भगवान का नाम लेकर शुभ उद्देश्य से संकल्प ले लो तुम्हें कामयाबी उसी प्रकार मिलेगी जिस प्रकार कांटों में फूल खिलता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

75

समाहित जीवन - समाधित मन

जीवन जितना सरल व तरल होता है उतना ही स्व-पर के लिए सुखद प्रतीत होता है, पाषाण जैसा जीवन खुद और दूसरों पर वोझ जैसा प्रतीत होता है, जल को सब जगह स्थान मिल जाता है वह घुलनशील पदार्थो को अपने अंदर घोलकर उसके स्वाद को प्राप्त कर लेता है किन्तु पत्थर आपस में टकराकर खण्ड-खण्ड हो जाता हैं जिसका जीवन मिल जाना व मिला लेना इस प्रकार का होता है वें सर्वत्र सुख का अनुभव करते है यह निभने व निभाने की कला संसार की सुखोत्पादक व सर्वोत्कृष्ट कला है इसी में सबका भला है अन्यथा जीवन एक बला है, स्वर्ण जैसा पुरुष सौ बार टूटकर भी जुड़ सकता है किन्तु अधम पुरुष मिट्टी के कलश की तरह एक बार टूट कर पुनः जुड़ नहीं पाता किसी ने कहा भी है -

सज्जन पै सौ - सौ चले दुर्जन चले न एक।
ज्यों जमीन पाषाण की ठोके ठुके न मेज ।।

समाहित समत्व के साथ स्वपर के हित में संलग्न जीवन समाधि युक्त समाहित जीवन होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

76

अकलबाजी में दखलबाजी ठीक नहीं

कोई व्यक्ति अपना काम बुद्धिपूर्वक सोच समझकर कर रहा है, भविष्य में आने वाली प्रतिकूलता व अनुकूलता को भी जान चुका है उसका प्रतिफल व समाधान सोचकर अपना कार्य कर रहा है तो आप उसमें दखलंदाजी न करो, आप अपने को श्रेष्ठ समझ कर टोको मत, यदि आप श्रेष्ठ है तो उससे भी श्रेष्ठ कार्य सहजता में ही सम्पन्न कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करो, किन्तु बिना माँगे तुमकों सलाह नहीं देना है, बिना माँगे जो सलाह दी जाती है उसका कोई महत्व नहीं होता, यदि वास्तव में ही आप योग्य है तो उस कार्य के संबंध में सलाह लेने के लिए व्यक्ति स्वतः आयेगा, कभी – कभी ठोकर भी व्यक्ति को सही बता कर मंजिल तक पहुँचा देती है कहा भी है –

ठोकरे खाई है जिन पत्थरों से मैने,
मंजिल के निशा भी उन्हीं पत्थरों से मिले ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

77

सरस बनो मात्र साक्षर नहीं

संसार में न तो विद्यावान पुरुषों की कमी है और न ही बुद्धिमानों की, कहा जाता है विद्या विहीन पुरुष पशु के समान होता है, विद्या मनुष्य का ऐसा गुप्त धन है जिसे न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है, न भाई बँटवारा कर सकता है, उसका कुछ वजन भी नहीं है इतना ही नहीं बल्कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वह बाँटने पर भी वृद्धि को प्राप्त होती है अतः व्यक्ति को साक्षर होना जरूरी है, किन्तु साक्षरता के साथ सदाचारी, शिष्टाचारी व सुसंस्कारी होना भी जरूरी है यदि मात्र साक्षर ही बने सदाचारी, शिष्ट, सुसंस्कारी नहीं तो साक्षरा के विपरीत प्रवृत्ति करने लगते है, साक्षरा का विपरीत क्या होगा यह तो आप समझ ही गये होंगे (साक्षरा – राक्षसा) अतः आप सरस बने उसका उल्टा सीधा सदैव सरस ही रहता है। पुष्प को प्यार करो, रगड़ो चाहे कुचलों, गले में हाथ में कहीं भी धारण करो उसकी गंध नहीं जाती किंतु काँटे का सही उपयोग किया है तो काँटा निकालने के काम आता है और जरा सा भी चूक गये तो हाथों को लहूलुहान कर देगा ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

78

विवाहित को विशेष बाधा

स्वहित में संलग्न व्यक्ति ही परहित करने में समर्थ होता है। स्वहित में ही परहित समाहित होता है, किन्तु स्वहित में परहित व परहित में स्वहित तभी समाहित होता है जब समभाव विद्यमान हो समभाव का आशय है समतामय परिणाम, राग - द्वेष से रहित प्रवृत्ति। यह समत्व का भाव कषायों के शमन से, पंचेन्द्रियों के दमन से, पंच पापों के वमन से, पंचपरमेश्ठियों के नमन व आत्मा में रमण करने से प्राप्त होता है, यद्यपि सम शब्द के अर्थ समीचीन, सम्पूर्ण, संयमित और समता आदि रुप लिए जा सकते है जिसमें सम भाव समाहित है वह मोक्षमार्गी है। विवाहित व्यक्ति को यह भाव प्राप्त होना कठिन होता है क्योंकि उसके मार्ग में विशेष बाधाऐं (वि - विशेष, वा - बाधा, हित - कल्याण) आ जाती है, इसी कारण अविवाहित अपना कल्याण करनें में अधिक समर्थ होता है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

79

ऐसे भी कुछ मित्र

संसार में यूं तो कई प्रकार के मित्र हो सकते है फिर भी छः प्रकार के मुख्य रूप से जान सकते हैं।

प्रथम :- पारे की तरह - बुभुक्षित पारा सोना-चाँदी आदि सबको भक्षण कर सकता है किंतु वह पारा हाथ में पकड़ नहीं आता, खा लो तो पेट से छेद कर बाहर निकल आता है उसे जलाकर भस्म बना कर ही उपयोग में ला सकते हैं।

द्वितीय :- पानी की तरह - पानी उस वस्तु की इज्जत आबरु होती है बिना पानी के मोती मानस चून बेकार है, तलवार पर भी पानी की धार होती है, दूध का पानी जल जाये तो व्याकुल हो जाता है तब पानी अपने प्राणों की आहुति देकर उसकी रक्षा करता है, पानी हर जगह अपना स्थान बना लेता है। अंजुली संभाल कर रखों तो रहता है अन्यथा बूंद - बूंद करके निकल जाता है।

तृतीय :- बालूकी तरह- यदि इन्हें खुले हाथ पर रखे तो यावज्जीवन साथ रहेंगे कसकर पकड़ने से मुट्ठी के बाहर निकल जायेंगे ।

चतुर्थ :- धूप-छाँव की तरह ये केवल दिखते है इनका उसी समय लाभ ले लो ये कभी पकड़ में नहीं आते ।

पंचम :- गीली चिकनी मिट्टी की तरह - एक बार हाथ से चिपकती है तो छुटाने से भी नहीं छूटती, शीतलता प्रदान करती रहेगी ।

षष्टम :- सुगंधित वायु की तरह - शीतल मंद सुगंध वयार दिखती नहीं है किन्तु सुख देने वाली होती है। ये मित्र आँक्सीजन की तरह होते है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

80

अनुशासित जीवन

अंकुश के वश में चलने वाला हाथी, लगाम के वश में चलने वाला घोड़ा, नकेल सहित ऊँट, नाध से नधा बैल, रथ जुते घोड़े, बैल, ब्रेक सहित वाहन अपनी मंजिल तक पहुँचने में एवं अपने सवारों को पहुँचाने में समर्थ होते है। विद्युत दो तारों के बीच जब तक अनुशासित बहती है तब तक लोकोपकारी सिद्ध होती है, दो किनारे के बीच बहने वाली नदी हरियाली और खुशहाली देती है, वृद्धि व समृद्धि को उडेलती हुई एवं ताप - संताप हरती हुई कल - कल मधुर स्वर में संगीत नाद करती हुई, उछलती - कूदती, सबकी प्यास बुझाती व सब में आश जगाती हुई अपने प्रियतम सागर तक पहुँचती है। अनुशासन विहीन होने पर वरदान स्वरूप न होकर अभिशाप बन जाती है नर संहार करके प्रलय कर सकती है, इसी तरह जो मनुष्य अनुशासित शिष्य या भक्त की तरह जीवन जीते है वे अपने चरम व परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होते हैं चलो और चलाओ अपना वाहन किंतु ध्यान से संतुलन कही बिगड़ न जाये नहीं तो पतित हो जाओगे ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

81

अपरिवर्तनीय ही है ये परिवर्तन

परिवर्तन प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है जो द्रव्य शाश्वत शुद्ध रुप है उनमें शुद्ध रुप और जो शाश्वत अशुद्ध रुप है उनमें अशुद्ध रुप परिणमन निरंतर चलता रहता है, जीव का अजीव रुप व अजीव का जीव रुप परिणमन कभी नहीं होता, इस सत्य को प्रबुद्ध व सामान्य सभी जानते है किन्तु मोही प्राणी इस रहस्य को जानकर भी नहीं मानता अतः वह संसार में निरंतर परिभ्रमण करता है । भव्य जीव कभी शुद्ध परिणमन नहीं कर सकता तो सिद्ध परमेष्ठी (मुक्तात्मा) कभी अशुभ परिणमन नहीं कर सकते, जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव उष्ण है उसका शीतल परिणमन असंभव है, इसी प्रकार जल का स्वभाव शीतल है उसका अग्नि रुप परिणमन असंभव ही है, इसी प्रकार संसारी प्राणियों को अपने संबंध में भी सोचना चाहिए । संसारी पर्याय का त्याग किये बिना मोक्ष पर्याय रुप परिणमन असंभव है, एक द्रव्य में एक समय में एक ही पर्याय रहती है इससे ज्यादा नहीं, भव त्यागे बिना शिव दशा रुप परिवर्तन होना असंभव है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

82

जिन हाथों से आज तक मीठा खाया

वृक्ष की छाया सदैव एक दिशा में नहीं रहती, कभी वह पश्चिम की और तो कभी पूर्व की ओर तो कभी छाया मध्य में रहती है तो कभी लुप्त भी हो जाती है, जिस वृक्ष ने फल दिया उस पर कांटा भी लगता है, जिस प्रकृति ने दिन का प्रकाश दिया है तो रात्रि का अंधकार भी, जिस प्राणी के जीवन में पुण्य का उदय आता है तो पाप का उदय भी, जो वस्तु सुख का निमित्त बन सकती है वह दुःख का भी, जिस निमित्त से जीवतंता आती है तो मृत्यु भी उससे संभव है। जीवन में जिन हाथों से मीठा खाने को मिला यदि कदाचित कड़वा फल खाने को मिले तो उसे उसी सम्मान से ग्रहण कर लेना चाहिए तो कड़वाहट में भी मीठे का आनंद आ जाएगा।

स्वार्थी व्यक्ति कभी किसी वस्तु से प्रेम करता है तो कभी किसी वस्तु से किंतु निष्पक्ष और न्यायप्रिय व्यक्ति दोनों परिस्थितियों में सदैव समभाव रखता है यह तो आप भी जानते है कि संघर्षमय जीवन का अंत हर्षमय ही होता है, रात के बाद दिन व दिन के बाद रात होती है, काश ! हम भी अपने उपकारियों के प्रति कृतज्ञता व विनम्रता से भर जाये तो हमारा कल्याण न दुर्लभ है न दुस्साध्य और न ही असंभव ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

83

बिना प्रबोध के जीवन बनता बोझ

जिस प्रकार भूखे व्यक्ति के लिए सिर पर या पीठ पर रखी भोजन सामग्री बोझ स्वरुप होती है, अंधकार में चलने वाले व्यक्ति के लिए बंद टॉर्च या बुझा हुआ दीपक बोझ स्वरुप है, प्यासे व्यक्ति के लिए सिर पर रखा हुआ अमृतोपमा शीतल जल से भरा कलश बोझ स्वरुप है उसी प्रकार प्रकृष्ट बोध/ आत्म बोध / तत्त्वज्ञान के अभाव में शास्त्रों से या विद्वानों के वचनों से संग्रहित किया गया शब्द ज्ञान बोझ स्वरूप होता है, जिस प्रकार वह व्यक्ति जो वाहन चलाना नहीं जानता (यदि चलाना जाने तो उस पर सवार होकर मंजिल तक सुगमता से पहुंच सकता है) वह अपने कंधे पर वाहन को रखकर चला जा रहा है तो यह उसे बोझ के समान है जो संयमी जीवन का आंनद लेने में असमर्थ है उसके लिए व्रत भी बोझ स्वरूप हो सकते है।

अतः धर्मानुरागी महानुभाव ! अपने जीवन की सफलता और सार्थकता की तलाश कर उसे वरदान स्वरूप बनाओं अभिशाप नहीं ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

84

अर्थ काम की कींचड

जीवन रूपी सरिता के दो किनारे है प्रथम-धर्म और दूसरा- मोक्ष, इन दोनों के बीच में बहने वाला जल है - अर्थ और काम । जब दोनों किनारे शिथिल हो जाते है तब अर्थ और काम का जल सर्वत्र फैला, विखरा दिखाई देता है कभी वह कीचड़ का रुप ले लेता है तो कभी संहारक बाढ का रुप, किंतु जब नदी के दोनों किनारे सुदृढ़ हो और उत्तुंग भी तथा नदी की धारा तीव्र गति से बह रही हो या मंद गति से उस समय वह न तो कीचड़ पैदा कर सकती है न ही संहारक बन सकती है, जीवन रुपी नदी में जब धर्म का किनारा कमजोर हो तो अर्थ जीवन को व्यर्थ ही नहीं करता अपितु जीवन को अनर्थकारी भी बना देता है किंतु धर्म का किनारा सुदृढ होने से अर्थ भी परमार्थ का कारण बन जाता है, मोक्ष का किनारा सुदृढ़ ना हो तो काम की कीचड़ या दलदल में फंसकर जीवन का काम तमाम हो जाता है यदि पुरुषार्थ रुपी किनारा सुदृढ़ है तो काम की कीचड़ सूख जाती है और काम आत्म राम से मिलन करता हुआ मुक्तिधाम का कारण बन जाता है।

85

मन की चार दशायें

जिस प्रकार जीवन के चार प्रहर होते है - प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न और सांझ उसी प्रकार मानव जीवन की चार अवस्थाऐं होती है - बाल्यावस्था, यौवनावस्था, प्रोढ़ावस्था और वृद्धावस्था इसी प्रकार मन की भी चार दशायें है - १. रुद्धमन २. क्रुद्ध मन ३. बुद्धमन ४. शुद्धमन । रुद्ध मन वह कहलाता है जो आत्मा को सन्मार्ग पर चलने से रोके, कपाट, अरगला या सांकल के बंधन जैसा काम करे यह दशा मिथ्यादृष्टि की होती है, इसे विरुद्ध या बैरी मन भी कहा जाता है। दूसरी दशा है क्रुद्धमन यह मन की विपरीत दशा है यह सन्मार्ग पर बढ़ने में पूरी तरह बाधक नहीं बनता किन्तु बीच - बीच में उत्तेजित होकर सन्मार्ग को छोड़ने की धमकी देता है। बुद्ध मन सन्मार्ग पर विवेक पूर्वक चलना सिखाता है मार्ग की अनुकूलता व प्रतिकूलता का बोध कराता है, शुद्ध मन आत्महित की सवोत्कृष्ट अवस्था है शुद्ध मन को सन्मार्ग से च्युत कर पाना असंभव है।

86

अंक से शून्य की ओर

जिसके आदि या प्रारम्भ में एक या अनेक शून्य हो और बाद में एक या कोई अंक हो तो उन शून्यों का कोई महत्व नहीं है, अंको की वृद्धि या ह्रास संसार के सुख - दुःख का ही गणित है, चाहे अंक 'नौ' ही क्यों न हो किन्तु शून्य के आनंद से फिर भी रहित ही होगा, अंक यदि प्रारंभ में हो तो अंत में रखे हुए शून्य उसका मूल्य बढ़ाने में समर्थ होते है। शून्य की यात्रा अंकों को छोड़े बिना नहीं हो सकती, जो अंकों को पूरी तरह छोड़ने के लिए राजी हो जाता है वही पूर्ण रुप से शून्य दशा या सिद्ध दशा का आनंद प्राप्त करने में समर्थ होता है, अधूरे शून्य भी अंक की तरह प्रतिभासित होते है और कई बार अंक भी शून्य जैसे प्रतिभासित होते है, किन्तु ध्यान रखे अंक कभी शून्य नहीं हो सकता व शून्य कभी अंक नहीं होता, गिनती का प्रारम्भ शून्य से नहीं १ से होता है और संख्या का प्रारम्भ २ से होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

87

मृत्यु हो तो ऐसी

संसार में जिसका भी जन्म होता है उसका मरण सुनिश्चित है, जो 'जन्म' जन्म का या मरण का अंत ना कर सके वह जन्म व्यर्थ है और जिस मरण से मरण और पुनर्जन्म की श्रृंखला ना टूटे वह मरण भी सार्थक नहीं । यदि मरण का वरण शुद्ध अन्तर्मन से किया जाये तो वह तारण -तरण, भव्य - शरण एवं सिद्धत्व का चरण बन जाता है। कर्मो का हरण और स्वभाव धरण का कारण समाधि मरण कहलाता है। मैं भी ऐसे मरण की भावना भाता हूँ जो मरण, मरण से पूर्व ना हो और जिस मरण में आपको जीने की या पूर्व मे मरण की इच्छा ना हो, मैं चाहता हूँ कि क्षपक बनकर खमण (उपवास व क्षमाभाव) करता हुआ आत्म रमण के साथ निर्यापकाचार्य की साक्षी में निस्क्रमण व प्रतिक्रमण पूर्वक मृत्यु का वरण करूँ । हे प्रभो ! अंत समय में मेरे कंठ में अरिहंत नाम, नेत्रों में जिनबिम्ब, हृदय में सिद्ध, मस्तक पर आचार्य परमेष्ठी का वरद्हस्त, कानों में उपाध्याय परमेष्ठी का संबोधन, सेवा वैय्यावृति के रुप में यथाजात श्रमण साधुओं का सानिध्य प्राप्त हो, यह मेरी इस भव की अंतिम भावना है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

88

चार बातें सदाचार की

सदाचार "सत्+ आचार" इन दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है "समीचीन आचरण , व्यवहारिक आचरण या सत्य आचरण । सदाचार में चार बातों में समीचीनता होना जरूरी है - प्रथम 'सद्विचार' अर्थात् जिस व्यक्ति के विचार स्व व पर की सुख शांति में निमित्त बने तथा वे निर्वद्ध हो यही विचार सद्विचार है। द्वितीय है 'सद् व्यवहार' अर्थात् आपसी व्यवहार प्रेम युक्त हो, हितकर हो, चित्त के क्लेश, दुःख और आर्त्त को मिटाने वाला हो, जो व्यवहार हम दूसरों से चाहते है वह व्यवहार ही सदाचार का अभिन्न अंग है। तृतीय है 'सद् आहार' अर्थात् जो मनुष्य अभक्ष्य भक्षण नहीं करते क्योंकि बहुहिंसक पदार्थो का सेवन या उपयोग करने वाले सदाचारी कैसे हो सकते है और चतुर्थ है - सत्कार्य अर्थात् जो अच्छे कार्य करता है गुणी व धार्मिक जनों का सत्कार करता है, वहीं वास्तव में सदाचारी कहलाने के योग्य है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

89

अधिकार है कर्त्तव्य का प्रतिबिम्ब

अधिकार शब्द संस्कृत के अधिकृत शब्द के अर्थ के रुप में व्यवहृत होता है। इसमें 'अधि' का अर्थ है अच्छा, अधिक या निकटता, 'कृत' शब्द का अर्थ है - कार्य करना या अच्छे कार्य करना। 'कर्त्तव्य' शब्द का अर्थ होता है ' करने योग्य कार्य । जब कोई प्राणी अपने करने योग्य कार्यों को अच्छी तरह या अधिक रुप में सम्पन्न करता है तो वह अधिकृत या अधिकारी बन जाता है, स्वयं भोजन करना सामान्य बात है व दूसरों को भोजन कराना विशेष बात है जो सामान्य कार्य के उपरान्त विशेष कार्य करता है तो वही कार्य अधिकृत या अधिकार कहलाते है, सज्जन पुरुषों द्वारा सत्य के प्रकाश में किये गये विशेष या अधिकृत कार्यो की छाया, आभा या भामण्डल अधिकार कहलाता है, बिम्ब के बिना जैसे प्रतिबिम्ब पैदा नहीं होता, एक के बिना दो की उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार कर्त्तव्यों के बिना अधिकारों का जन्म नहीं होता, अधिकार कभी दिये नहीं जाते ये कर्त्तव्यों के साथ उसी प्रकार प्राप्त होते है जैसे द्रव्य के साथ पर्याय ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

90

सर्वश्रेष्ठ है जीवन धन

संसार में विद्यमान जितने भी प्राणी है वे सदैव अपनी सुरक्षा एवं संवर्द्धन में संलग्न रहते है, जिसे वे अपने जीवन में सर्वश्रेष्ठ व दुर्लभ मानते हैं। आज कोई व्यक्ति अपने धन की वृद्धि व सुरक्षा में जीवन की समागत आपत्ति - विपत्ति में समस्याओं का सामना कर रहा हैं तो कोई पंचेन्द्रिय के विषयों की सुरक्षा व संवर्द्धन में अनेक संघर्षो का सामना करने को तैयार है, तो कई ऐसे भी लोग है जो परिजन - पुरजन की सुरक्षा में कृत संकल्पित हैं तो कोई भूमि के टुकड़े की सुरक्षा व संवर्द्धन में लगा है तो कोई जन्म भूमि या धन के लिए कुर्बानी देने को तैयार है, तो कोई व्यक्ति अपने यश - प्रतिष्ठा ख्याति - लाभ व पूजादि की प्राप्ति के लिए सबकुछ दाव पर लगाने को तैयार है किन्तु में इन सबको देखकर प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु ! इन्हे इतनी सद्बुद्धि दे दें कि ये धर्म युक्त जीवन का सही मूल्याकंन कर सकें । समीचीन / संकल्पित सुख - शांति से युक्त धार्मिक जीवन ही जिन्दगी का सर्वश्रेष्ठ धन है। इतनी सी बात इनकी समझ मे आ जायें ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

91

सत्य से रहित सत्ता

जीवन में वही वैभव, धन, निधि और सम्पत्ति सुख - शांति देने में समर्थ होती है जिनका आधार सत्य हो । असत्य के धरातल पर खड़ी हुई निस्सीम भौतिक वैभव की इमारत किसी को कभी भी किंचित भी यथार्थ सुख नहीं दे सकती । हाँ सुख से विचलित कर सकती है मृगमरीचिका की तरह दिखाकर यथार्थ जल से दूर कर सकती है, संसार में जितने भी सत्ताधारी है उनकी सत्ता तभी तक जीवंत है जब तक उनके जीवन में सत्यांश नींव में है, पुण्य का उदय चल रहा है, सत्य का सूर्य अस्त होते ही अंधकार युक्त निशा के आगमन को रोकने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । क्षणध्वंसी सत्ता को शाश्वत बनाने के लिए सत्य के प्राण आवश्यक है, प्राणी जीवंत तभी तक कहलाता है जब तक तन में प्राण रहते है, प्राण विहीन शरीर मुर्दा कहलाता है इसी प्रकार सत्य विहीन सत्ता मूर्दा है, उसे आज नहीं तो कल अवश्य ही जला दिया जायेगा, दफना दिया जायेगा अन्यथा वह बदबू ही उगलेगी।

आचार्य वसुनंदी मुनि

92

मुट्ठी भर राख और चुल्लू भर पानी

चाहे कोई व्यक्ति अमीर है या गरीब चाहे विद्वान हो या मूर्ख, सर्वांग सुन्दर हो या अतिशय कुरुप, मधुरभाषी हो या कटुवक्ता, वंदनीय हो या निंदनीय, व्यवहार कुशल हो या उपद्रवी, शांत स्वभावी हो या आतंकवादी, लोकप्रिय हो या सर्वविद्वेषी, साधक हो या बाधक, आराध्य हो या आराधक,उपास्य हो या उपासक, बलवान हो या निर्बल, समूह में रहने वाला हो या एकाकी, महलों में विलासिता का जीवन जीने वाला हो या झौपड़ी में फटे चिथड़ों में अपनी इज्जत (लाज) ढांकने / बचाने वाला, अद्भुत दान करने वाला दानवीर कर्ण/ भामाशाह जैसा हो या कचरे में से खाने वाला, एक दिन तो सबको मृत्यु की गोद में समान रूप से सोना ही है, सबको छोड़कर जाना है, सभी के जीवन का सूर्य अस्त होना ही है यह सभी जानते है, मरने के बाद इस शरीर का चुल्लू भर पानी और मुट्ठी भर राख इस मिट्टी में मिल जाना है, जिससे यह शरीर बना था। यदि यही जीवन का सच है तो फिर इतनी अकड़ क्यों? पदार्थों की इतनी मजबूत पकड़ क्यों? बोलो भैय्या बोलो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

93

विश्व विजेता मन को न जीत सका

संसार मे प्रत्येक काल में महान पुण्यात्मा युग प्रधान महापुरुषों का जन्म होता रहा हैं, हर काल में अतिशय निंदनीय पापी जीवों का भी जन्म हुआ, पुण्यात्मा के सामने पापी कुख्यात दशा को प्राप्त हुए तथा पापिष्ठों के श्याम व्यक्तित्व के नभांगण में पुण्यात्मा महापुरूषों का व्यक्तित्व सूर्य चंद्र की तरह सर्वव्यापी हो गया । विश्व के किसी एक ग्राम, नगर, देश को जीतने वाले उन पर पूर्ण अधिकार के साथ शासन करने वाले, समुचे विश्व को जीतने वाले भी अपने मन को इन्द्रियों को जीतने में असमर्थ रहे, इसलिए तो उनकी भूख मृत्यु पर्यंत शांत नहीं हो सकी संसार में दूसरों को जीतना तो सरल है किंतु अपनो को और खुद को जीतना बड़ा कठिन है दूसरों को जीतने के लिए वीरता के साथ तलवार का वार समर्थ है तथा अपनों को जीतने के लिए धीरता तथा प्यार ही कामयाव हो सकता है। खुद को जीतने के लिए तत्त्वज्ञान के साथ प्रभु नमन, कषाय शमन, इन्द्रिय दमन व आत्मरमण आवश्यक है। देखो विश्वविजेता सिंकदर सबकों जीत कर अपने मन को नहीं जीत सका ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

94

दुःख की जननी - वेलगाम आकांक्षा

संसार के अधिकांश प्राणी अपने दुःखों के लिए आपत्ति - विपत्ति, परेशानी, मुसीबत व संघर्ष के लिए सदैव दूसरों को ही दोषी ठहराते है, किन्तु मैं मानता हूँ कि अपने दुःखों के लिए कभी भी किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता । आज मानव अपनी ही निस्सीम आकांक्षाओं वेलगाम इच्छाओं व तृष्णा के कारण दुःखी है, लोकाकाश का तो अंत है, सागर और पृथ्वी का भी अंत है किन्तु प्राणियों की इच्छाओं का कभी अंतिम छोर देखने में नहीं आया, हमने और आपने अनेक वस्तुओं का अंत (नष्ट होते हुए) देखा है, प्राणी शरीरों का भी अंत देखा है, दिन और रात का भी अंत देखा है, मौसम का भी अंत देखा है किन्तु ऐसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है जो कहे कि में पूर्ण संतुष्ट हूँ, अब मेरी कोई इच्छा शेष नहीं है, यदि ऐसा व्यक्ति मिल जाये तो उसे परमात्मा का सच्चा प्रतिनिधि संत महात्मा समझना वही आज का भगवान है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

95

खट्टी छाछ का दुरुपयोग क्यों?

एक दुर्व्यसनी युवक ने राह चलते हुए देखा कि एक निर्धन व्यक्ति बाल्टी भर छाछ को नाली में डाल रहा हैं उसने युवक से पूछा क्यों भाई यह छाछ पीने लायक नहीं हैं क्या? क्या इसमें कोई विषाक्त गिर गया है? या यह अशुद्धि के कारण अपेय है, उसने कहा नहीं भैया जी ऐसा कुछ भी नहीं है फिर आप इस छाछ को अन्य भिखारियों को क्यों नहीं दे देते वे आप से माँग भी रहे है कम से कम वे ही इस छाछ में रोटी भिगोकर खाने से अपना पेट भर लेंगे, उसने कहा जनाब क्षमा करें यें मेरी छाछ है मैं इसका कुछ भी कर सकता हूँ इस पर मेरा अधिकार है, वह युवक बोला फिर भी इसका दुरूपयोग करना गलत है। क्या आप सदैव यही देखते है कौन अपने दूध का, कौन मिठाई का, कौन साग - सब्जी का, कौन भोजन का दुरूपयोग कर रहा है, क्या कभी तुमने अपने बारे में सोचा है जो तुम अपने यौवन का, धन का, वचन का, मन का, किसी के वात्सल्य स्नेह का, आदर - सम्मान का दुरूपयोग करने से नहीं चूकते, मैंने यह छाछ तुम्हें सबक सिखाने के लिए डाली है ।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

96

आनंद को पर में मत खोजो

आनंद की खोज करने वाले धीमान् और श्रीमान् जरा ध्यान से सोचों वह आनंद कहाँ है जिसकी तुम्हें तलाश है? क्या वह आनंद किसी स्थान विशेष पर हैं? या वह आनंद किसी काल विशेष में मिलता है? या किसी वस्तु की प्राप्ति से मिलेगा? किसी कार्य विशेष के सम्पन्न करने से मिलेगा? हमारा स्वाभाविक आनंद न किसी स्थान विशेष पर है ना किसी काल विशेष पर आधारित है, उसे किसी पर वस्तु या पर भावों से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, पर द्रव्य में स्वाभाविक आनंद को खोजना वैसे ही माना जायेगा जैसे अग्नि में शीतलता खोजना और आकाश में मूर्तिमान रुप व पुद्गल में चिन्मयता और जीवात्मा में अचेतनता अतः स्वानंद को पर में मत खोजो, पर को खो दो और अपने अंतरंग की परतों को खोदो वही अपने में खोजो वह वहीं है, वही मिलेगा, जब चाहो तब अनुभव कर लेना।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

97

दूसरों के सुख का आधार बनना सीखों?

प्रायः मानव अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए दूसरों को अपना बनाना चाहता है, अपना स्वार्थ सिद्ध होते ही उससे अपना संबंध तोड़ लेता है, दूसरों के लिए अपने सुख का आधार या निमित्त तो बनाना चाहता है, उन्हें अपने दुःख का निमित्त नहीं बनने देना चाहता है किन्तु आश्चर्य तो यह है कि दूसरों के सुख में निमित्त बनने को राजी नहीं है, दूसरें के सुख का आधार नहीं बनना चाहता। जिन्होंने अनन्त सुख को प्राप्त कर लिया हैं उनको सुख का निमित्त नहीं बनाना चाहता। यदि तुम सुखी हो जाओगे तो तुम्हारी वर्गणाऐं दूसरों के सुख का आधार बन सकेंगी। प्याज बदबू देती है पुष्प खुशबू। भोगी, कामी, पापी पापादि के प्रेरक है, वातावरण वैसा ही बनता है जैसी वस्तु होती है। विरागी, वीतरागी जंगल में भी आनंद कर देते है, अनंत सुखी अरिहंत दूसरों के सुख के नियामक आधार है।

एलाचार्य वसुनंदी मुनि

98

हर जगह अपनी गलती खोजो

एक छोटा बालक अ आ इ ई आदि वर्णमाला या ए बी सीडी (A B C D) इत्यादि वर्णमाला अल्फावेट या १ से १०० तक गिनती याद कर लेता है तो वह अपने आपको बहुत बड़ा समझने लगता है, जिस बालक को उतना याद नहीं है उसे तुच्छ व हीन समझने लगता है। यदि उसके पिताजी, माताजी भाई या बहिन उसके सामने वर्णमाला या अल्फावेट या गिनती बोलते समय जानबूझ कर गलत बोले तो बालक तुरंत रोक देता है आप गलत बोल रहे हो । दूसरों की गलती निकालने की आदत बहुत पुरानी है परन्तु निः संदेह यह बहुत बुरी आदत है। दूसरों की गलती खोजने वाला जीवन भर दुःखी रहता है, वे अपना सुधार नहीं कर पाते, हमने जीवन में ऐसे अनेक व्यक्ति देखे है जिन्होंने दूसरों को परेशान किया, दोषी सिद्ध किया, गलत ठहराया, प्रयश्चित या दण्ड दिलाया या उनकी बेइज्जती की आगे वे ही व्यक्ति जो अपने आपको श्रेष्ठ मानते थे, बड़ी दयनीय दशा को, दुर्गति को, दुःख दरिद्रता को प्राप्त हुए उनकी दशा देख लोगों ने फिर उनका मजाक बनाया अतः आप सदैव अपनी गलती खोजों और सुधारों ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

99

मोह - राग - रति

प्रेम शब्द के कई रुप है यथा - मोह, राग, वासना और रति । मोह शब्द का अर्थ है ऐसा कर्म जो आत्मा को मोहित करे और आत्मा इतना मोहित हो जाये कि वह अपने स्वरुप को भूल कर परस्वरूप को ही अपना मान बैठे वह मोह हैं। राग शब्द का अर्थ है लीनता - यह लीनता दो प्रकार की होती है एक बुराई में लीन होना, बुराई में लीन होना वासना है, विषयानुराग है, कदाचार है, असंयम है, भोगासक्ति है पर पदार्थो में लीनता हैं। दूसरा, राग अच्छाई में लीन होना है इसे धर्मानुराग, गुणानुराग, सदाचरण, आत्मलीनता, निजशक्ति, वात्सल्य की तीव्रता, प्रेम भाव का विस्तार हैं। तीसरा शब्द है रति - रति शब्द का अर्थ है पर को देखना, उसे पाने की चाह करना ।

मोही दूसरे के घर को अपना मान बैठा है, सभी अपने को अपना मानते है दूसरें को दूसरा, फिर दूसरे के घर में बैठकर अपना घर देखता है, रति वाला अपने घर के द्वार पर खड़ा होकर दूसरे का घर देखता है। मोह - शत्रु राजा है, राग - शत्रु का सेनापति और रति शत्रु पक्ष का सैनिक ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

100

स्वगृह का द्वार है - अनुग्रह

जब तक प्राणी परिग्रह में रचा - पचा है तब तक वह दुराग्रही बना रहता है, वह हठाग्रही हो जाता है तब उसे नवग्रह भी समय - समय पर अपना फल देते रहते है और निग्रह एवं विग्रह के कार्य में ही संलग्न देखा जाता है। व्यक्ति को कदाग्रही नहीं अपितु सदाग्रही, गुणाग्रही बनना चाहिए, जो निज आत्मा में प्रवेश करना चाहते है उन्हें विग्रह करने जैसे खोटे कार्य छोड़ देना चाहिए क्योंकि निजगृह - स्वगृह में प्रवेश करने का एक ही मार्ग है वह है अनुग्रह अर्थात् जो व्यक्ति नित्य स्व - पर के अनुग्रह - उपकार करने में संलग्न रहता है वही निज गृह की ओर जा सकता है वही जीव निज अनुग्रह में लीन होकर स्वगृह में सुरक्षित रुप से अनंत काल तक निवास करता है, जो भी स्वगृह में शाश्वत वास करना चाहते है उन्हें अनुग्रह करने का और अपरिग्रह का संकल्प लेना चाहिए।

आचार्य वसुनंदी मुनि

101

स्वभाव और संस्कार

संसार में दो चीज है एक दृश्यमान, दूसरी अदृश्य, एक प्राकृतिक दूसरी विकृत, एक प्रकाशमान दूसरी अंधकारमय, एक सुखपूर्ण दूसरी दुःखान्वित, एक स्वाधीनता दूसरी पराधीनता, एक स्वगृह दूसरी घर घर भटकन। जो जीव अनंत काल तक निज के शुद्ध स्वभाव में लीन हो गये वे सदा के लिए सुखी हो गये किन्तु जो वैभाविक स्वभाव में लीन है वे भव भ्रमण ही कर रहे है, वैभाविक स्वभाव वालों के पास दो चीज है एक के पास सुसंस्कार दूसरे के पास कुसंस्कार। कुसंस्कार पतन की ओर और सुसंस्कार उत्थान की ओर ले जाते है, स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता वह सदैव अपरिवर्तन शील ही होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

102

सड़क मार्ग की तरह है व्यवहार धर्म

धूल मिट्टी व कीचड़ से युक्त मार्ग में बैलगाड़ी, पशु, मानव और कोई प्राणी चलते है तो उनके चरण चिन्ह बन जाते है किन्तु वे अल्प काल तक ही रह पाते है, जल में चलने पर न कदाचित् बनते हुए दिखायी देते है न वे टिकते है, किन्तु आकाश में उड़ते पक्षी के उड़ने पर न पद चिन्ह होते है न दिखायी देते है कीचड़ मुक्त स्थल मार्ग भोगियों का मार्ग है, धूलयुक्त मार्ग सदाचारी, सज्जनों का मार्ग है, सड़क मार्ग व्यवहार धर्म का मार्ग है आत्म शांति पाने वाले व्यवहार धर्मात्मा का मार्ग जलीय मार्ग है। आध्यात्मिक योगी मार्ग तो हेलीपैड़ की तरह हैलीकॉप्टर या हवाई जहाज या कोई वायुयान जब उतरता या चढ़ता है तभी उसका स्थान जो निश्चित है, दिखता है। इसी तरह आध्यत्मिकता का मार्ग आध्यात्मिक योगी और भोगी का अपना अलग - अलग होता है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

103

अग्नि परीक्षा बिना लोकपूज्यता असंभव

धूप को सहन किये बिना छाया का आनंद नहीं लिया जा सकता, काँटों की राह पर चलने वाले ही पुष्पमार्गी बन जाते है, दुःखों को भोगने वाले ही सुखों को भोगने के सच्चे अधिकारी होते है, पर पदार्थो में अति आसक्त रहने वाला ही निज स्वभाव में लीन होने में समर्थ हो पाते है, काँटो की चुभन के बिना पुष्प की कोमलता का एहसास नहीं हो पाता, पत्थर की मार सहन करने वाले का हृदय ही नवनीत जैसा कोमल बन जाता है, दुःखों की अग्नि में जलकर ही सुख की परम शुद्धि संभव है, अग्नि परीक्षा बिना लोकपूज्यता असंभव है, कहते है क्रान्ति के बिना शांति संभव नहीं । घृणा के मध्य से ही प्यार का जन्म होता है। जिस प्रकार कीचड़ में कमल खिलता है, काँटों में गुलाब तथा दीपक से काजल जन्म लेता है, कोयलें में हीरा पलता है उसी प्रकार अत्यन्त दरिद्र अकिंचन यथाजात दिगम्बर नग्न पुरुष में ही परमात्मा प्रकट होता है, निरम्बर व दिगम्बर हुए बिना परमेश्वर नहीं बन सकते ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

104

कैसे बने दर्पण

आप जानते है दर्पण उसे कहते है जिसमें बिना शर्त के अर्पण करने पर वह ज्यों का त्यों सब कुछ समर्पण कर देता है। दर्पण का दूसरा नाम आदर्श भी है वास्तव में यह उसका एक विशेष गुण भी है बिना किसी सुधार या संशोधन के सामने वाले बिम्ब का प्रतिबिंब दे देता है। प्रतिबिम्ब में सुधार करने के लिए बिम्ब में सुधार करना पड़ता है। बिम्ब के चेहरे पर लगा काला दाग प्रतिबिम्ब को धोने से न छूटेगा । दर्पण यही काम तो करता है। बिम्ब के श्याम धब्बों को प्रतिबिम्ब में दिखाता है। समझदार वही है जो अपने बिम्ब में से उसे साफ करके दोनों चेहरे निर्मल कर लेते है। आदर्श व्यक्ति ही समाज का दर्पण है, अपना सुधार चाहने वाला आदर्श के सामने खड़ा होकर अपना सुधार कर स्वयं को आदर्श बना सकता है। आदर्श कहता है कि आ और खुद को खुद में नहीं देख सकता तो मुझमें देख, किन्तु ऐसा आदर्श बन पाना सरल नहीं है। जो खुद को अपना आदर्श बना लेता है अर्थात् खुद को खुद में देख लेता है। वही आदर्श बन पाता है, दर्पण भी तो यही कर रहा है कि अपने दर्प को (अहंकार को) नष्ट कर और बन जा दर्पण ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

105

निशंक हुए बिना निष्कांक्ष नहीं बन सकते

स्वयं के अस्तित्व में या स्वरूप में शंका होती है तब आत्मा शंकित हो जाती है, किन्तु जब परमात्मा के स्वरुप में शंका पैदा होती है तब - तब कांक्षा भाव पैदा होता है - भगवान से वही भक्त याचना करता है जिसकी श्रद्धा में कुछ गड़बड़ होती है या जो परमात्मा को सर्वज्ञ या सर्वदर्शी नहीं मानता है या जिसे कर्म सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है जिसे आत्मा के अस्तित्व में शंका नहीं है जो जानता है द्रव्य दृष्टि से आत्मा नित्य है पर्याय दृष्टि से अनित्य है। संसार का समस्त वैभव पुद्गलमय है वह कभी पूरण कभी गलन होता है वह चैतन्यमय नहीं हो सकता तथा बिना स्वकीय पुण्योंदय के अनुकूल सामग्री नहीं मिल सकती तथा बिना स्वकीय पापोदय के कोई भी मुझे कुछ नहीं दे सकता, सघन वृक्ष के नीचे बैठकर छाया नहीं मांगी जाती तथा बिना वृक्ष के छाया माँगने पर भी नहीं मिल सकती अतः कांक्षा भाव व्यर्थ है, निष्कांक्षता रुप भावना ही जीवन को सार्थक करने वाली है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

106

सरदार बनो तो असरदार भी

सर उसे कहते है जो सिर की तरह से महत्वपूर्ण हो, श्रेष्ठ हो, शास्ता हो, नियंता हो, नैतृत्त्व शक्ति से सहित हो, प्रतिष्ठावान हो । अंग्रेजी में सर शब्द का अर्थ 'श्रीमान' के रुप में लिया जाता है, अपने से सीनीयर के लिए, बॉस के लिए, ऑनर के लिए सर शब्द का प्रयोग किया जाता है। पंजाबी भाषा में, सिक्खों में मुख्य व्यक्ति को सरदार कहते है यह सरदार शब्द भी यही प्रकट करता है कि यह मुखिया है, श्रेष्ठ है, विभु है, प्रभु है, राजा है अपनी अलग पहचान रखने वाला है। जो विशेषताऐं जन सामान्य में नहीं सरदार में है किन्तु हम सरदार उसे मानते है जो असरदार हो अर्थात् प्रभाव छोड़ने वाला हो, जो अपनी क्रिया चर्या से, बोली - वाणी से, सोच समझ से हर कार्य प्रणाली से अपनी आत्मा को प्रभावित करने में समर्थ है और दूसरों को भी श्रेयमार्ग की प्रेरणा देने वाला है वही वास्तव में सरदार होता है, दूसरों पर अपना असर / प्रभाव छोड़ने की भावना रखने वाला सरदार नींव रहित मकान की तरह से है क्योंकि खुद पर अपना असर छोड़े बिना दूसरों पर असर छोड़ने की भावना निर्मूल है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

107

निशंक हुए बिना निर्भयता असंभव

संसार में जितने भी प्राणी सशंकित है उतने ही प्राणी भयभीत भी है, शंका और भय दोनों एक दूसरे के अविनाभावी है क्योंकि निशंक को भय कहाँ? और निर्भय को शंका कहाँ? शंका का चूहा जब सम्यक्त्व की जड़ को कुतरता है तभी सम्यक्त्व धारी आत्मा अपने सम्यक्त्व को बचाने के लिए भयातुर हो जाती है, जिसे अपने अस्तित्व के संबंध में कोई शंका नहीं उसे मृत्यु भी नहीं डरा सकती । शंका से बचने का उपाय है उसका सम्यक् समाधान प्राप्त कर ले । सम्यक्त्व के कुंऐ से शंका की कीचड़ निकालकर बाहर करो, शंका के चूहे को बाहर निकालना ही आत्मा के लिए हितकर हो सकता है न कि उसे दबाने वाला । निर्भय और निडर बनने के लिए सबकों अभय दान दो, किसी प्रकार के भय को मन में स्थान मत दो यदि कहीं भय का कारण मिलता है तो यह सोचो कि किसी भी भय या प्रतिकूलता में आत्मा का किंचित् भी क्षय नहीं हो सकता अतः निशंक, निर्भय, निर्मोही, निर्विकारी, निष्कांक्ष, निर्विचिकित्सक, निर्मल, निर्मूढ, निर्जर, निकल, निष्कर्म बनो यही तुम्हारा स्वभाव है।

आचार्य वसुनंदी मुनि

108

दाव मत चूको यह

संसार के अधिकांश प्राणी शव (पार्थिक शरीर) के सजाने, भव (संसार) के बढ़ाने में, रव (शोर) के मचाने में, दव (अग्नि) लगाने में, गव (गाने योग्य) के गाने में, नव - नव (नूतन पर्याय) पाने में, तथा तव(सामने वाले को रिझाने) में प्रायः कर अपना अमूल्य समय वृथा गंवा देते है, यदि वह अपनी आत्मा के भावों/ परिणामों को सुधारने का प्रयास करें तो भव सागर से पार हो सकता है। दाव देखकर के संयम या रत्नत्रय के अस्त्र शस्त्र लेकर कर्मो को दबा सकता है, किन्तु वह तभी संभव हो पायेगा जब उसके मन में आत्म कल्याण का चाव हो । आत्म कल्याण की रुचि, तत्त्वज्ञान, वैराग्य और संयम के साथ की गई तपस्या एंव निर्विकल्प ध्यान के माध्यम से यह आत्मा तीन लोक का राव (राजा) बन सकता है। अपने भावों को सुधारे बिना चेतना में विद्यमान पाप कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले दुःख रुपी घावों से कौन बचा सकता है अतः जिनधर्म की नाव में बैठकर जिसके खेवटिया निर्ग्रन्थ गुरु है, से सिद्ध स्वरूप प्राप्त करो ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

109

तीन लोक में सर्व शक्तिमान - कर्म

कर्म के मुख्य रूप से दो भेद है - एक पाप कर्म और दूसरा पुण्य कर्म। बुरे विचारों से, भावों से, कार्यों से, शब्दों से, दृश्यों से प्रायः पाप कर्म का बंध होता है। चित्त में बुरा आशय धारण करके किया गया अच्छा काम भी पाप बंध का कारण बनता है। अच्छे विचार, परिणाम, शब्द, कार्य, दृश्य इत्यादि पुण्य बंध का कारण है। अच्छी भावना, शुभ संकल्प, एवं समीचीन इरादे के साथ हुआ बुरा कार्य भी पुण्य बंध का कारण होता है। पुण्य सुख का तथा पाप दुःख का कारण होता है, पुण्य संसार से निकालने व पाप संसार में डूबाने वाला होता है। जब आत्मा पर पाप कर्म की मार पड़ती है तब धर्म करने का भाव भी मन में नहीं आता, पापकर्म के तीव्रोदय में प्रायः पापमय प्रवृत्ति हो जाती है, उस समय पापकर्म की मार से बचाने वाला धर्म ही मात्र सहारा होता है, पुण्योदय में पुण्य करने वाले शिवशरण को पाते हैं पुण्य का सदुपयोग करने वाले परमात्म दशा को व दुरुपयोग करने वाले अधोवस्था को प्राप्त करते हैं।

आचार्य वसुनंदी मुनि

110

रहस्य अधूरे और पूरे शब्दों का

प्रेम, प्रार्थना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान यह जीवन की अपूर्णता के बोधक शब्द है और ये मध्यम मार्ग के परिचायक है, इनके रहते जीव या आत्मा पूर्णता को प्राप्त नहीं होता क्योंकि इनके प्रारम्भिक अक्षर ही अधुरे है, किन्तु दान, पूजा, शील, उपवास, विनय, तप, सेवा, उपकार, दया, सहजता, सरलता आदि गुण चेतना की पूर्णता के प्रतीक है, इन गुणों का अन्तिम सीमा तक विस्तृत हो जाना ही चेतना का पूर्ण स्वरूप है अर्थात् मंजिल की सम्प्राप्ति है, शायद इसलिए ही प्रकृति ने इन गुणों में अधूरा अक्षर नहीं रखा । यह बात सत्य भी है यदि आप एकान्त में सकारात्मक सोच लेकर चिन्तवन करोगे तो पाओगे इन शब्दों का यथार्थ रहस्य ।

आचार्य वसुनंदी मुनि

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी,दीक्षा सम्राट आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निज अवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग-1
19. योगामृत भाग-2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग-1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग-2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग-1
27. महापुराण भाग-2
28. योगसार-भाग-1
29. योगसार-भाग-2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधना सार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग -1
40. उपासकाध्ययन भाग -2
41. रामचरित्र भाग-1
42. रामचरित्र भाग-2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग-1
45. आराधना कथा कोश भाग-2
46. आराधना कथा कोश भाग-3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग-1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग-2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग-1
55. धर्मामृत भाग-2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग-1
64. पुराण सार संग्रह भाग-2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र

68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरल काव्य
75. धर्म संस्कार भाग-1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा-अर्चना
82. नौ-निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
85. तत्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि(जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग-2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती
(महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति-भाग-2
97. कर्म विपाक
98.भरतेश वैभव
99. सुभाषित रत्न संदोह

100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शांतिनाथ भक्तामर,
सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1,2,3,4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोजन त्यागः क्यों?
109. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्मः क्या, क्यों, कैसे?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1,2,3
113. कल्याणी
114. कलम-पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज-रोज
117. जागरण
118. सीप का मोती
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डाक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र

135. पदमपुराण
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्वज्ञान तरंगड़ी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति
149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. सदार्चन सुमन
156. शान्तीनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं
प्रमाणिकसमाधान
159.वसुऋद्धि
160.संस्कारादित्य
161.मुक्तिदूत के मुक्तक
162.श्रुत निर्झरी
163. जिन सिद्धांत महोदधि
164. उत्तम क्षमा
165. मान महा विष रूप
166. तप चाहें सुर राय
167. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे

168. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आंसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्व विचारो सारो
182.अजितनाथ विधान
183.गुरुवर तेरा साथ
184.ठहरो ऐसे चलो
185. आईना मेरे देश का
186.अन्तर्यात्रा

प्रेस में:-

फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियाँ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
एक हजार आठ
मन मीठा बदमाश
शास्त्र परिचय
अधिवक्ता कैसा हो
मीठे प्रवचन भाग 4